[illegible]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] गीत

भारत-दुर्दशा [illegible]

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' [illegible]

[illegible] ३

अमलताश [illegible]

लक्ष्मी ३२

पं० श्रीधर पाठक ३६

हिमालय ३७

भारत-गीत ३७

छाया ३९

आर्य-महिला ४०

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ४१

दीपावली ४२

भारत के नवयुवक ४३

शक्ति ४४

प्रिय-प्रवास ४६

श्री मैथिलीशरण गुप्त ५१

आगे ५२

एक फूल ५३

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] जीवन [illegible]

श्री मुंशी अजमेरी

ताज महल

श्री माखनलाल चतुर्वेदी [illegible]

वेदना गीत मे [illegible]

बलिदान [illegible]

उन्मूलित वृक्ष [illegible]

कोकिल बोलो तो ७८

बाबू जयशंकर 'प्रसाद' ८२

गीत ८४

ओ री मानस की गहराई ८४

अरी वरुणा की शांत कछार ८५

आँसू ८६

याचना ८७

[illegible]

वाद [illegible] ९१

कुछ और है	९१	[illegible]	१२८
[illegible]	९२	श्रीमती महादेवी वर्मा	१३०
[illegible] ?	९४	[illegible]	१३१
[illegible]	९६	[illegible]	१३२
[illegible]	९७	[illegible]	१३३
[illegible]	९८	[illegible]	१३४
श्री सुमित्रानन्दन पन्त	९९	[illegible]	१३६
[illegible]	१०१	[illegible]	१३७
[illegible]	१०४	[illegible]	१३८
परिवर्तन	१०५	श्री सियारामशरण गुप्त	१४०
[illegible]	१०६	[illegible]	१४१
[illegible]	१०७	[illegible]	१४२
श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन	१०८	[illegible]	१४४
[illegible]	१०९	[illegible]	१४८
[illegible]	११०	श्री भगवतीचरण वर्मा	१४६
[illegible]	१११	[illegible]	१५०
[illegible]	११४	दीवानों का संसार	१५३
[illegible]	११६	[illegible]	१५४
[illegible]	११७	श्री रामकुमार वर्मा	१५५
श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिंद	११९	[illegible]	१५७
[illegible]	१२०	[illegible]	१५८
[illegible]	१२१	[illegible]	१५९
[illegible]	१२४	[illegible]	१६०
[illegible]	१२५	[illegible]	१६०
अनुरोध	१२८	[illegible]	१६१
जीवन दीप	१२८	रहस्य	१६२

कुछ शब्द

कविता क्या है ?

अपना सुख-दुख, आनंद-वेदना संसार के आगे व्यक्ति की सुनाना केवल मानव का ही नहीं प्रत्येक प्राणी का स्वभाव है, यहाँ तक कि जड़ पदार्थ भी हमें नीरव भाषा में अपनी ही अनुभूति एवं सुनाते रहते हैं। यह आत्म-प्रकाशन की इच्छा ही तो साहित्य और विशेष रूप से कविता की उत्पत्ति का कारण है। प्राचीन साहित्य-शास्त्रियों ने कविता की क्या परिभाषा की है, इस विवाद का ही व्याख्यान यहाँ अनावश्यक, मैं यहाँ आधुनिक कवियों के कविता के विषय में क्या उद्गार व्यक्त हुए हैं उन पर एक दृष्टि डाल लेना उचित समझता हूँ। श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने एक स्थान पर लिखा है—

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।

किसी वियोगी हृदय की आह ही सब से पहले कविता के रूप में प्रकट हो गई होगी। इसी तरह श्री रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है—

उमड़कर पीड़ा उठा कर कवि था।

जैसे कोई मनुष्य किसी आघात से तड़पता है तो दर्द से चीख उठता है, वैसे ही संसार की व्यथा से व्याकुल जब मानव हृदय तड़प उठता है तो अपनी चीख को कविता के रूप में प्रकट कर देता है। कविता तो बरबस निकलती है। जब हृदय।
तः कविता बन पड़ती है।

अपने जीवन का अस्तित्व देखता है, वह रो पड़ता है। कविता लिखने लगता है। प्रकृति के कण-कण में वह अपने आपको पाता है। इस लिए जहाँ हम कहते हैं कि अंतर्वेदना का व्यक्तीकरण ही कविता है, वहाँ हमारा तात्पर्य अपनी और बाह्य-जगत् की, वेदना को व्यक्त करने से है। पाठकों की सुविधा के लिए हम परिभाषा को इस प्रकार बदल भी सकते हैं—

"अपने अंतर की तथा बाह्य जगत की वेदना अर्थात् सुख दुःख की अनुभूति का गान ही कविता है।"

कवि 'विश्व-सुंदरी' का घूँघट खोलकर उसका सौंदर्य भावुक-हृदयों को दिखाता है। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' की नीचे दी हुई रचना से यह भाव अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है। कहते हैं—

खोल दे संसृति घूँघट आज
भला कवि है किसको लाज ?

अरे भर गहरा पारावार
अतल में रक्खे रत्न अपार,
सीपियों के भीतर चुप-चाप
छिपा रक्खे मोती सुकुमार।

सजा हूँ मानव मन का साज।
तुम्हारे इस वैभव से आज !
पास आ जाओ ओ आकाश !
दूर कवि से है किसका वास ?

नील अंबर का तान-वितान
जड़ रक्खे तारक-रत्न महान।
जहाँ जा सकते जिन तक कभी
विकल विहगों के भी तो प्राण !

हिंदी कविता का विकास

वास्तव में यह आश्चर्य की बात है कि प्रत्येक भाषा के साहित्य में पहले कविता अंकुरित हुई है बाद में गद्य। हमारी हिंदी भाषा का तो सारा प्राचीन साहित्य पद्य में है। गद्य तो वास्तव में देखा जावे तो भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के युग में कुछ कुछ तुतला कर बोलने लगा था, किंतु पद्य चंदबरदाई के युग से पहले भी जवान था। चंदबरदाई के रासो में उस समय का समाज अपने सच्चे रूप में अंकित है। कवि ने अपने आस-पास के चित्र को अपने अंतर के रंग में रँग कर पुस्तक पर अंकित कर दिया है।

यह हम पहले बता चुके हैं कि अन्तर्जगत् और बाह्यजगत् की वेदना का व्यक्तीकरण ही काव्य है। मनोभावों पर प्रकृति-सौंदर्य का, देश का, समाज का, और राजनीतिक उलट-फेरों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। परिस्थितियों के साथ कविता की भाषा, विषय और उद्देश्य बदलते जाते हैं। यही बात हिंदी के काव्य-साहित्य पर घटित हुई है। प्रारंभ में जब कि देश 'क्षत्रियत्व' में मस्त था, 'वीर गाथाएँ' लिखना ही कवियों का जीवन-धर्म बना रहा। उससे उन्हें धन भी मिला और यश भी। राज-सभाओं में पलने वाले कवियों ने अपनी काव्य-प्रतिभा को राजाओं के गुण गाने के लिए बेच दिया।

धीरे-धीरे देश का शासनाधिकार मुसलमानों के हाथ में जाकर स्थिर हो गया। देशी रजवाड़ों ने विदेशियों को आत्म-समर्पण कर दिया। साथ ही विजेता मुसलमान विजित जाति में अपने धर्म का प्रचार भी करने लगे। इस राजनीतिक तथा धार्मिक परिवर्तन ने देश के साहित्य की धारा को भी बदल दिया। हताश और आतंकित जनता प्रभु का आश्रय ढूँढने लगी। मुसलमानों के संपर्क में आने के कारण पहले साहित्य में निर्गुण और निराकार की उपासना बढ़ी।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र के युग से काव्य-साहित्य ने रंग बदला, और इस संग्रह में दी हुई 'भारत-दुर्दशा' जैसी रचनाएँ लिखी जाने लगीं। भाषा भी बदली। अब, तो भी, एक सीमित से साहित्यिक समुदाय की भाषा रही। जब कवि ने जनता के हृदय को प्रतिध्वनित करना प्रारंभ किया तो उसने खड़ी बोली को अपनाया। प्रारंभ में अपरिष्कृत असंस्कृत खड़ी बोली में लिखने के कारण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे प्रतिभाशाली कवि भी इस भाषा में उत्कृष्ट काव्य-रचना न कर सके। इस प्रयत्न करके भी खड़ी बोली के प्रारंभिक काल के कवियों की ऐसी रचनाएँ न पा सके जो आधुनिक काल की रचनाओं के साथ रख सकते इसलिए इस संग्रह में बाबू हरिश्चन्द्र, रायदेवीप्रसाद पूर्ण और श्रीधर पाठक की कुछ कविताएँ देकर संतोष कर लिया है।

इस युग में जो भारतेंदु से प्रारंभ होकर बाबू मैथिली शरण तक रहा, भावनाओं, छंदों और भाषा में क्रांति हुई। वे पुराने शृंगारी कवित्त और सवैये भाग खड़े हुए। उनके स्थान पर देश और समाज की परिस्थिति की ओर कवि की दृष्टि गई।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली का चोला ही बदल दिया। उसे अधिक परिष्कृत, संस्कृत, बना दिया उसमें ओज के साथ माधुर्य भी भरा। इस युग में राष्ट्रीय-धारा प्रस्फुटित हुई। बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पं० रामनरेश त्रिपाठी, श्री माखनलाल चतुर्वेदी जैसे राष्ट्रीय कवि पैदा हुए। इनकी वाणी में राष्ट्र का प्रतिनिधित्व है। और भी सैकड़ों कवियों के हृदयों में जन्मभूमि का शंख-नाद हो उठा।

इसी युग में प्राचीन कवियों की भाँति अंतर्मुखी प्रवृत्ति रखने वाले, या बाह्य जगत् को आत्मसात् करके उसकी वेदना को आत्मानुभूति की भाँति व्यक्त करने वाले बाबू जयशंकरप्रसाद, निराला, पंत, महादेवी और मिलिंद जैसे महान कलाकार भी पैदा हुए। इन्होंने चिरंतन भावनाओं को आकार दिया—ऐसी भावनाओं को जो प्रत्येक

यह चाँद उदित होकर नभ में
कुछ ताप मिटाता जीवन का
लहरा-लहरा यह शाखाएँ
कुछ शोक भुला देती मन का,
कल मुर्झाने वाली कलियाँ
हँसकर कहती हैं मग्न रहो,
बुलबुल तरु की फुनगी पर से
संदेश सुनाती यौवन का
तुम देकर मदिरा के प्याले
मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का
उपचार न जाने क्या होगा ?

उस असंदिग्ध, अज्ञात लोक की प्राप्ति के लिए कठिन तपस्या करने के पक्ष में यह संप्रदाय नहीं है।

इस तरह आधुनिक कविगण हिंदी-कविता-साहित्य में विविध विषय, भावनाएँ और विविध दार्शनिक तत्त्वों का समावेश कर रहे हैं। हमारे इस संग्रह में सभी तरह की रचनाओं को स्थान दिया गया है !

कविता में विविधता

एक ही काल की कविता में अपितु एक ही कवि की कविता में कभी-कभी बड़ा वैषम्य पाया जाता है। इसका कारण यह है कि एक ही काल में, एक ही देश में सुखी, दुखी, आशावादी, छायावादी और हालावादी सभी प्रकार की मनोवृत्ति वाले हृदय होते हैं, इसलिए साहित्य में विविधता होना शुभ चिह्न है। संपूर्ण साहित्य संपूर्ण देश के हृदय का चित्र बन जाता है। एक ही कवि कभी एक सिद्धांत का

आज सोने का संध्याकाल
जल रहा जतुगृह-सा विकराल !

(पल्लव)

कैसी तीखी वेदना है कवि के जीवन में ! कितना वह बेचैन है ! कवि समझता है रोते रहना ही मानो विश्व का धर्म है। वह कहता है—

सिसकते हैं समुद्र-से मन
उमड़ते हैं नभ से लोचन,
विश्व-वाणी ही है क्रंदन,
विश्व का काव्य अश्रु-कण !
गगन के भी उर में है घाव,
देखती ताराएँ भी राह !

(पल्लव)

किंतु इसी पीड़ा के रंग को ही सारे विश्व में देखने वाला जीवन को अधिक दार्शनिक दृष्टि से देखने लगता है। वह दुःख और सुख दोनों का स्वागत करता है। उसकी बेचैनी कम हो जाती है। वह लिखता है—

सुख दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन,
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन,
जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित रे अति सुख से,
मानव जग में बँट जावे,
दुख-सुख से औ सुख-दुख से !
अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न,

मानवता अनुभव करना और इसी अनुभूति को कविता में व्यक्त करना छायावाद है। छायावादी कवि जड़-प्रकृति में भी उसी चेतन का दर्शन करता है जिस चेतन ने उसको भी जीवन दिया है।

उदाहरण के लिए श्री सुमित्रानन्दन पंत की 'छाया' कविता को लीजिए। उन्होंने 'छाया' को चेतनामय वस्तु के रूप में सम्बोधन किया है और अंत में वे कहते हैं—

हाँ सखि! आओ बाँह खोल, हम
लग कर गले, जुड़ा लें प्राण,
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अंतर्धान

यहाँ छाया के साथ कवि ने कितनी आत्मीयता प्रदर्शित की है। इन पंक्तियों से पहले भी पंत जी लिखते हैं—

हे सखि, इस पावन अंचल से
मुझको भी निज मुख ढँककर,
अपनी विस्मृत सुखद गोद में
सोने दो सुख से क्षण भर।
चूर्ण-शिथिलता-सी अँगड़ा कर
होने दो अपने में लीन।
पर-पीड़ा से पीड़ित होना
मुझे सिखा कर कर मद-हीन!

इन पंक्तियों में कवि 'छाया' में मानवीय भावनाओं का आरोप करता है। उसमें अपने अस्तित्व को लीन करना चाहता है—उससे कुछ सीखना चाहता है।

वर्तमान छायावादी कवियों की रचनाओं को पढ़कर हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि जिन कविताओं में कवि प्रकृति में मानवीय भावनाओं का आरोप करके उसके साथ अपनी आत्मीयता व्यक्त करता है वे

छायावादी [illegible] रहस्यवादी कहते [illegible] है आत्मा [illegible] करते हैं, तब तो पहले वाली [illegible] प्रतीत है दर्शन करने को [illegible] भी छायावाद [illegible] प्रकृति में आत्मा का सम्बन्ध स्थापित करना, और [illegible] प्रतीत है दर्शन करना यह ही वाद है।

महादेवी वर्मा की निम्नलिखित कविता छायावाद का अच्छा उदाहरण है—

प्रिय ! सान्ध्य गगन,
मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुंधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन !
साधों का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन,
यह अश्रुमती हँसती चितवन
लाता भर श्वासों का समीर,
जग से स्मृतियों का गंध धीर,
सुरभित है जीवन-मृत्यु-तीर,
रोमों में पुलकित कैरव-वन !

संध्या के साथ महादेवी जी ने एकरूपता का अनुभव किया है। यही एकरूपता अनुभव करना छायावाद है।

छायावाद से भी ऊँची भावना है रहस्यवाद की। जब कवि अनंत ' साथ अपने संबन्ध का अनुभव करता है और उस अनुभूति को

छंदों—गानों—में व्यक्त करता है तो ऐसी रचनाएँ रहस्यवादी कहलाती हैं। रहस्यवादी कवि अनन्त के साथ अपने तरह तरह के सम्बन्धों की कल्पना करता है, उस के विरह की व्यथा, या मिलन के आनन्द को कविता में लिखता रहता है।

रहस्यवाद के तीन दर्जे होते हैं। पहला यह जब कि कवि हृदय में एक बेचैनी सी अनुभव करता है, जब उसे इस जगत् के प्रति विराग-सा उत्पन्न होता है, उसे ऐसा जान पड़ता है जैसे उसका कुछ खो गया है, एक अभाव का वह अनुभव करता है। श्री हरिकृष्ण प्रेमी के रहस्यवादी काव्य 'अनंत के पथ पर' के प्रारंभिक पृष्ठों में इस बेचैनी का बहुत सुन्दर वर्णन है। हम कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करते हैं—

नभ के पर्दे के पीछे
करता है कौन इशारे ?
सहसा किसने जीवन के
खोले हैं बन्धन सारे ?
जग के सुख-दुख से मेरा
अब टूट चुका है नाता,
पर, समझ नहीं पाई हूँ
है मुझको कौन बुलाता ?
किसका अभाव मानस में
सहसा शशि-सा आ चमका ?
है क्या रहस्य बतला दे
कोई इस अंतर्तम का ?
इन सरस-सरस नयनों में
किसकी उज्ज्वल छवि छाई ?

बुन्धि आकार अनुमाने
कोयाको नाहिं बाधा पावे,
पूरो एक देह देख्या,
साँचे हिये माया के
मन के आकार बाधा के ॥

"मैं अपने मन को, अपनी काया को और इस धासी दास को एक दम मिटा देता हूँ। अपने मन और शरीर को आग में जला देना चाहता हूँ, साथ ही इस माया को कुचल डालना चाहता हूँ। मैं जहाँ बैठा हूँ वहीं इन्हें आसन लगा कर बैठे हुए देख कर लाज से मर जाता हूँ। हे हरि, इस प्रकार द्यावा, मेरे शरीर को धुन लो। जैसे शरीर से तुम्हें कहीं भी बाधा न पहुँचे। मेरी माया को हटा कर तुम मेरे शरीर को एकान्त में अपना पूर्ण दर्शन दो।"

कवि अपने शरीर के अस्तित्व को भी मिलन-मिलन में बाधक समझता है।

रहस्यवाद की तीसरी कोटि है वह, जब माया का आवरण दूर हो जाता है और परमात्मा और आत्मा का मिलन हो जाता है। दोनों में एकरूपता स्थापित होती है। प्रेमी जी की 'अनंत के पथ पर' पुस्तक की ये पंक्तियाँ इस स्थिति का चित्र खींचती हैं—

इन बन्द पलकों में तो
उस पावन सा है काया,
खुल गए नयन अन्तर के
जब उसने रूप दिखाया।
बुझ गए सूर्य, शशि, तारे,
हट गए सिंधु व अम्बर।
रुक गई यहीं पर साँसें,
मिट गया यहीं पर अन्तर!

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

तुमि आमार अनुमाये
कोथाओ नाहि बाधा पावे,
पूर्ण एका देवे देखा,
सरिये दिये माया के
मन के आमार काया के॥

"मैं अपने मन को, अपनी काया को और इस काली छाया को एक दम मिटा देता हूँ। अपने मन और शरीर को आग में जला देना चाहता हूँ, साथ ही इस माया को कुचल डालना चाहता हूँ। मैं जहाँ जाता हूँ वहीं इन्हें आसन लगा कर बैठे हुए देख कर लाज से मर जाता हूँ। हे हरि, इस अगाध छाया, मेरे शरीर को तुम लो। मेरी शक्ति से तुम्हें कहीं भी बाधा न रहेगी। मेरी माया को हटा कर तुम मेरे शरीर को एकान्त में अपना पूर्ण दर्शन दो।"

कवि अपने शरीर के अस्तित्व को भी प्रियतम-मिलन में बाधक समझता है।

रहस्यवाद की तीसरी कोटि है वह, जब माया का आवरण दूर हो जाता है और परमात्मा और आत्मा का मिलन हो जाता है। दोनों में एकरूपता स्थापित होती है। प्रेमी जी की 'अनंत के पथ पर' पुस्तक की ये पंक्तियाँ इस स्थिति का चित्र खींचती हैं—

इन बन्द चक्षुओं में जो
जल प्लावन सा है आया,
खुल गए नयन अन्तर के
जब उसने रूप दिखाया।
बुझ गए सूर्य, शशि, तारे,
हट गए सिन्धु भू अम्बर।
रुक गई वहीं पर नौका,
मिट गया वहीं पर अन्तर!

'किसने मेरे प्राणों में
अपनी तसवीर बनाई ?
[illegible] हृदय का मेरे
[illegible] 'अज्ञात' कहलाना।
[illegible] का
[illegible] जाना।

रहस्यवाद की [illegible] जब यह पता चल जाता है कि इस वेदना का कारण [illegible] आत्मा का वियोग है। आत्मा और परमात्मा के [illegible] में, 'माया' ने खाई खोद रखी है। साधक इस माया को नष्ट करने का उद्योग करता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ की निम्नलिखित कविता में इस मनोदशा का सुन्दर वर्णन हुआ है। वे लिखते हैं—

मन के, आमार काया के,
आमि एकबार मिलिये दिते
चाइ, ए काली छाया के।
ए आगुन ज्वलिये दिते,
ए आंधार [illegible] दिते,
ए चरण [illegible] दिते,
दलिये दिते माया के,
मन के आमार काया के।
[illegible] आइ सवाइ एक
आसन जुड़े बसन [illegible]
लाजे मरि, लज्जागा हारि,
एइ मुनिविड छाया के।
मन के आमार काया के।

तुमि आमार अनुभावे
कोयाओ नाहि बाधा पावे,
पूर्ण एका देवे देखा,
सरिये दिये माया के
मन के आमार काया के ॥

"मैं अपने मन को, अपनी काया को और इस काली छाया को एक दम मिटा देता हूँ। अपने मन और शरीर को आग में जला देना चाहता हूँ, साथ ही इस माया को कुचल डालना चाहता हूँ। मैं जहां जाता हूँ वहीं इन्हें आसन लगा कर बैठे हुए देख कर लाज से मर जाता हूँ। ए हृदि, इस अगाध छाया, मेरे शरीर को सुन लो। मेरी शक्ति से तुम्हें कहीं भी बाधा न पड़ेगी। मेरी माया को हटा कर तुम मेरे शरीर को एकान्त में अपना पूर्ण दर्शन दो।"

कवि अपने शरीर के अस्तित्व को भी प्रियतम-मिलन में बाधक समझता है।

रहस्यवाद की तीसरी कोटि है वह, जब माया का आवरण दूर हो जाता है और परमात्मा और आत्मा का मिलन हो जाता है। दोनों में एकरूपता स्थापित होती है। प्रेमी जी की 'अनंत के पथ पर' पुस्तक की ये पंक्तियाँ इस स्थिति का चित्र खींचती हैं—

इन बाह्य चक्षुओं में तो
जल प्लावन सा है आया,
खुल गए नयन अन्तर के
अब उसने रूप दिखाया।
बुझ गए सूर्य, शशि, तारे,
हट गए सिंधु भू अम्बर।
रुक गई यहीं पर नौका,
मिट गया यहीं पर अन्तर!

भीषण बेचैनी, अशांति और वेदना ही हाथ लगती है। उस वेदना की पूँजी को छंदों में भर कर तरह तरह के रंग-रूप देकर संसार के सामने लाया जा सकता है पर उससे वे ही मुग्ध होते हैं, जिनकी आत्मा और हृदय का धरातल अधिक ऊँचा नहीं होता। लोक-प्रिय कवि बनने के लिए ऐसी रचनाएँ उपयोगी हो सकती हैं—पर लोक-प्रिय कवि उत्तम कवि भी होता है, ऐसा मानना भ्रम से खाली नहीं है। हमारे कई नवयुवक हिंदी कवि मूर्त्ति को ही अमूर्त समझकर दीवाने हो उठे हैं—असंयम की एक लहर सी वे प्रवाहित करते दिखाई देते हैं, यह शुभ चिह्न नहीं है।

कला की दृष्टि से वर्तमान हिंदी कविता पर्याप्त ऊँची उठ रही है। भाषा परिमार्जित और कोमल होती जा रही है। नवीन-नवीन भावनाएँ भरी जा रही हैं। संसार की किसी भी भाषा में हिंदी की कविताएँ अनुवादित होकर लज्जित न होंगी।

आजकल हिंदी में गीत लिखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। श्री महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, निराला, 'बच्चन' आदि ने सुन्दर गीत लिखे हैं। संगीत और काव्य का यह सम्मिलन कविता को लोक-प्रिय बनाने में सहायक होगा इसमें संदेह नहीं। बंगाल में रवि बाबू के गान घर घर में गाए जाते हैं। हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब हमारे हिंदी-भाषी घरों में हिंदी के प्रसिद्ध कवियों के भावपूर्ण गीत गाए जाएँगे। हमने इस संग्रह में कुछ गीत भी देने का प्रयत्न किया है।

हमने प्रयत्न किया है कि इस संग्रह में आधुनिक हिंदी कविता की सभी प्रवृत्तियों की रचनाएँ दें। संग्रह करते समय सुरुचि की ओर विशेष ध्यान रक्खा है, इसी कारण शृंगार रस की कविताएँ हम नहीं दे सके; फिर भी इस बात का प्रयत्न किया है कि संग्रह रूखा न बन जाय।

हमारा यह प्रयत्न सफल हुआ है या असफल यह तो पाठकों के निर्णय का विषय है।

—सम्पादक

निकाल कर, सभाएँ स्थापित करके तथा साहित्य-सेवियों को आर्थिक सहायता देकर वे हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि का निरंतर प्रयत्न करते रहे। इसीलिए तो वे नवीन हिन्दी साहित्य के जन्मदाता समझे जाते हैं।

इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। इन्होंने काव्य, स्तोत्र, परिहास, ऐतिहासिक ग्रंथ, नाटक, उपन्यास और आख्यायिकाएँ आदि सभी कुछ लिखा है। ब्रज, खड़ी बोली, संस्कृत, बँगला, गुजराती और पंजाबी आदि अनेक भाषाओं में इन्होंने कविताएँ लिखी हैं, जो बहुत सरल तथा हृदयग्राही हैं। छंदों में भी इन्होंने क्रांति की है। हिन्दी के प्राचीन छंदों के अतिरिक्त इन्होंने नए छंदों में भी कविताएँ लिखी हैं। इस संग्रह में इनकी प्रात-समीरन रचना इसका नमूना है। यह बँगला का पयार छंद है।

हारयौ भाग अभाग जीत लहि विजय निसान ह्यो री।
तब स्वाधीनपनो धन-बुधि-बल पहुला माहिं लयो री॥
शेष कछु रहि न गयो री।
उठो उठो भैया क्यों हारौ अपुन रूप सुमिरो री।
राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम झटपट सुरत करो री॥
दीनता दूर करो री।
कहाँ गए हवी दिन उनके पुरुषारथहिं हरो री।
चूड़ी पहिरि, स्वाँग बनि आए, धिक धिक सबन कहो री॥
भेस यह क्यों पकरो री॥
उठो उठो सब कमरन बाँधो शस्त्रन हाथ धरो री।
विजय-निसान बजाइ बावरे आगेइ पाँव धरो री॥
हरीसिन रँगन रँगो री॥
आलस में कछु काम न चलिहै सब कछु सो बिनसो री।
छिन गयो धन-बल, राज-पाट सब, छोरो नाम बचो री॥
तऊ नहिं सुरत करो री॥
फूँक्यौ सब कछु भारत ने कछु हाथ न हाथ रहो री।
तब रोवन मिष पीती गाईं भली भई यह होरी॥
भलो तेहवार भयो री॥

प्रात-समीरन

मंद मंद आवै देखो, प्रात समीरन
करत सुगंध चारों ओर बिखीरन।
गात सिहरात तन लागत मोहन
रैन निद्रालस जन-सुखद चंचल।
नैन धीम धीरे होत सुख पावैं गात
आवत सुगंध लिए पवन प्रभात।

छुअत सीतल सबै होत गात भाव
स्नेही के परस सम पवन प्रभात।
लिए जात्री फूल-गंध चलै तेज धाय
रेल रेल आवै लखि रेल प्रात-वाय।
विविध उपमा धुनि सौरभ को भौन
उड़त अकास कवि-मन किधौं पौन।

अस्थिर जीवन

साँझ सवेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है।
हम सब इक दिन उड़ जाएँगे यह दिन चार बसेरा है॥
आठ पेर नौबत बज बजकर तुमको याद दिलाती है।
जाग-जाग तू देख घड़ी यह कैसी दौड़ी जाती है॥
आँधी चलकर इधर उधर से तुमको यह समझाती है।
चेत चेत जिंदगी हवा सी उड़ी तुम्हारी जाती है॥
पत्ते सब हिल-हिल कर पानी हर-हर करके बहता है।
हर के सिवा कौन तू है वे यह परदे में कहता है॥
दिया सामने खड़ा तुम्हारी करनी पर सिर धुनता है।
इक दिन मेरी तरह बुझोगे कहता तू नहिं सुनता है॥

भारत-दुर्दशा

भारत के भुज-बल जग रच्छित;
भारत-विद्या लहि जग सिच्छित।
भारत-तेज जगत विस्तारा;
भारत-भय कंपत संसारा।
जाके तनिकहिं भौंह हिलाए;
थर-थर कंपत नृप डरपाए।

तोरयो दुर्गन, महल ढहायो;
तिनही में निज गेह बनायो।
ते कलंक सब भारत केरे;
ठाढ़े अजहूँ लखो घनेरे।
काशी, प्राग, अयोध्या-नगरी;
दीन-रूप सम ठाढ़ी सगरी।
चंडालहु जेहि निरखि घिनाई;
रही सबै भुव मुँह-मसि लाई।
हाय पंचनद, हा पानीपत;
अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत।
हाय चितौर निलज तू भारी;
अजहुँ खरो भारतहि मँझारी।
जा दिन तुव अधिकार नसायो;
सो दिन क्यों नहिं धरनि समायो।
रह्यो कलंक न भारत नामा;
क्यों रे तू बारानसि धामा।
सब तजिकै, भजिकै दुख भारो;
अजहुँ बसत करि भुव मुख कारो।
अरे अग्रवन तीरथराजा;
तुमहुँ बचे अबलौं तजि लाजा।
पापिनि सरजू नाम धराई;
अजहूँ बहति अवध-तट आई।
तुममें जल नहिं जमुना, गंगा;
बढ़हु वेगि करि तरल तरंगा।
धोवहु यह कलंक की रासी;
बोरहु किन झट मथुरा, कासी।

(६)

जगत के तू ही ताप अनेक,
प्रकट हैं किए यहाँ उपमान;
अरे इतिहासन में वृत्तान्त,
निहारे दुर्दिन के विस्तार ।

(७)

रूम, यूनान, मिस्र का रोब,
स्पेन, जर्मनि, या इंग्लिस्तान,
आस्ट्रिया, श्याम देश का रोब,
स्विट्ज़र, अमेरिका, जापान ।

(८)

सबल को जैसे है इतिहास,
हाय भी नवीन या प्राचीन,
ठौर ही ठौर भरी तेहि माँहि,
युद्ध की कथा महादुखदीन ।

(९)

अरे तू अगम समाइनहार !
अकथ दुरवगाह ! भयावन ! भीम !
कहाँ लौं बरनूँ हे महाराज !
तिहारे निर्दय कर्म असीम !

अमलतास

(अमलतास की डालियों में पीत-पुष्प-गुच्छों के लम्बायमान
अवलम्बन के वृक्ष को देखने पर उक्ति)

(१)

सुहाते अमलतास नव-मास, तुम्हारे दर्शन हैं अभिराम,
लटकते पीले सुमन-समूह, धूप काल में भी छवि-धाम ।

देख कुछ रोचक नए विचार, हृदय में उदय हुए दो-चार;
[illegible] का है यह आविर्भाव, रसिक प्रति प्रीति-पूर्ण उपहार।

(२)

[illegible] विपिन-नासिका-रूप सघन किंशुक प्रसून परिवार;
[illegible] गुलाब कचनार, विमल सेमल, अनार, गुलनार।
[illegible] की यह भूमि, बनी अनुराग-समुद्र अपार;
[illegible] ग्रीष्म को आज, किए देती है ज्वाला क्षार।

(३)

[illegible] जुही, अम्लान चाँदनी, कुमुद, चमेली-फूल;
[illegible] कनेर, निवारी फलवाला छवि मूल।
[illegible] निर्मल कान्ति, हुई निर्मूल मलिनता सगर्व
[illegible] सभी निदान, किए इस आतप ने अहरण।

(४)

[illegible] वारवार, चिर लोची द्रुम सुखमागार;
[illegible] प्रचण्ड अखण्ड, हुए नय हेतु चन्द्रिका भार।
[illegible] सुविधान, अकिंचन के धन हैं भगवंत;
[illegible] सीस, शीत पर दरसै पुन वसन्त।

(५)

[illegible] कुल संत विधाता उसका सुन्दर निदान;
[illegible] की मंद, गया उस सामग्री पर ध्यान।
[illegible] अनुपात के साथ, द्रुमों में अमलताम तू भक्त;
[illegible] निदाघ प्रतिकूल दहन में तेरे रहा अशक्त।

लक्ष्मी

"[illegible]", "रमा", पद्ममुखी, कलामा,
पद्मासना, पद्मवनाभिरामा;

पयोदरी, पयस्वी, उदारा,
देवी "जयंती", जय विष्णुदारा ।

(२)

"श्री", हेमवर्णी "हरिणी", सुशीला,
दारिद्र-बाधा-हारिणी सुरीला;
आनन्द-रूपा, प्रकृति-स्वरूपा,
सो वंदनीया जननी अनूपा ।

(३)

मनोहरा, पद्मधरा, प्रसन्ना,
सुधाकरा, साधु-सुर-प्रपन्ना;
हिरण्यवर्णा, नर-राज-कन्या,
सुराङ्गनाम्या, वर-रूप धन्या ।

(४)

मातंग-हिंकार विनोदिनी है,
तुरंग-पूर्वा, रथ-मोदिनी है;
सुनागरी, सागर-वासिनी है,
गुनागरी, विष्णु-विलासिनी है ।

(५)

सुवर्ण-लता-सी, सुमति-प्रभा-सी,
प्रिया-छटा-सी, सुमना सुधा-सी;
"सूर्या", "रमा", कांचन-वल्लिका-सी,
"चन्द्रा", शुभा, मंजुल मल्लिका-सी ।

(६)

संपत्करी, सर्व-व्यथा-हरी है,
तेजस्करी भूरि यशस्करी है;
लोकेश्वरी देवलोकेश्वरी है,
धनेश्वरी, प्राण-धनेश्वरी है

(७)

देवेन्द्र के लोक प्रभास तेरो,
यक्षेन्द्र के ओक विभास तेरो;
साकेत-कैलास-निवास तेरो,
श्री विष्णु के पास विलास तेरो ।

(८)

अज्ञान को तू रवि-मालिका है,
संकष्ट को काल-करालिका है;
दया-समुद्रा जन-पालिका है,
अनूप माता जल-बालिका है ।

(९)

विद्यावती है, गरिमावती है,
प्रज्ञावती है, महिमावती है,
तू शांकरी है, अरु भारती है,
प्रभावती है, प्रतिभावती है ।

(१०)

व्यापार-वीथी बिच तू उजेरी,
संसार-खेती बिच तू हरेरी;
उद्योग-उद्यान-वसन्त तू है,
दिगंत में सार अनन्त तू है ।

(११)

वसन्त में पुष्प ललाम तू है,
वर्षा-विहारी घनश्याम तू है;
हेमन्त में धान तुषार तू है,
संसार-सत्ता अरु सार तू है ।

(१२)

तू मंगला मंगलकारिणी है,
सद्भक्त के धाम विहारिणी है,
माता सदा पूर्ण-पिता-समेता,
कीजै हमारे चित में निकेता ।

(१३)

तू पंथ मों पै अनुकूल जो है,
संसार में, सो, प्रतिकूल को है ?
आदित्य-वर्णी वर विश्वरानी,
मैं तोहि बंदौं मन-काय-बानी ।

(१४)

श्री वासवी की जय माधवी की,
सुमालिनी की वनमालिनी की;
सुरोत्तमा की सु-मनोरमा की,
त्रिलोक-मा की अखिलोपमा की ।

पं० श्रीधर पाठक

[illegible] —मृत्यु संवत् १९८४]

[illegible] और [illegible] दोनों में सुन्दर
[illegible] का शब्द-योजना
[illegible] निरीक्षण और
[illegible] है इनकी आराध्य-
[illegible], ऊजड़ग्राम,
[illegible] मनोविनोद, श्री
[illegible] गीत, भारत-
[illegible] है [illegible] लिखने में भी
[illegible] का यथानुवाद
[illegible] नाम से बहुत ही

[illegible] इनके हृदय में राष्ट्रीय
[illegible] है [illegible] रचनाएँ आज

[illegible] का बाहुल्य है,
[illegible] के अनुकूल नहीं
है [illegible] और माधुर्य कम
[illegible]

हिमालय

अगणित पर्वत-खंड चहूँ दिसि देत दिखाई।
सिर परसत आकाश, चरण पाताल छुआई।
सोहत सुंदर खेत-पाँति तर ऊपर छाई।
मानहु विधि पट हरित स्वर्ग-सोपान बिछाई।
गहरे गहरे गर्त लघु दीरघ गहराई।
शब्द करत ही घोर प्रतिध्वनि देत सुनाई।
जहाँ निपट निरशंक, वन्य पशु सुख सों विचरत।
करत केलि कल्लोल, मुदित आनंदित विहरत।
कहुँ ईंधन को ढेर सिद्ध आवास बनावत।
कहुँ समाधि-स्थित जोगी की गुहा सुहावत।
विविध विलच्छन दृश्य, सृष्टि-सुखमा-सुख-मंडल।
नन्दन-वन-अनुरूप भूमि-अभिनय-रङ्गस्थल।
प्रकृति-परम-चातुर्य अनूपम अचरज-आलय।
श्रीधर-दृग छकि रहत अटल छवि निरख हिमालय।

भारत-गीत

१

जय जय प्यारा, जग से न्यारा
शोभित सारा, देश हमारा,
जगत-मुकुट, जगदीश-दुलारा
जग-सौभाग्य सुदेश।
जय जय प्यारा भारत-देश।

२

प्यारा देश, जय देशेश,
जय अशेष, सदय विशेष,
जहाँ न संभव अघ का लेश,
संभव केवल पुण्य-प्रवेश।
जय जय प्यारा भारत-देश।

३

स्वर्गिक शीश-फूल पृथिवी का,
प्रेम-मूल, प्रिय लोकत्रयी का,
सुललित प्रकृति-नटी का टीका,
ज्यों निशि का राकेश।
जय जय प्यारा भारत देश।

४

जय जय शुभ्र हिमाचल शृंगा,
कल-रव-निरत कलोलिनि गंगा,
भानु-प्रताप-चमत्कृत अंगा
तेज-पुंज तपवेश।
जय जय प्यारा भारत देश।

५

जग में कोटि-कोटि जुग जीवे,
जीवन-सुलभ अमी-रस पीवे,
सुखद वितान सुकृत का सीवे,
रहे स्वतंत्र हमेश।
जय जय प्यारा भारत देश।

छात्र

अहो छात्र-वर-वृंद, नव्य-भारत सुत, प्यारे।
मातृ-गर्व-सर्वस्व, मोद-प्रद, गोद-दुलारे।
अहो भव्य भारत भविष्य निशि के उजियारे।
तुम आशा विशाल व्योम के रवि, विधु, तारे।
गृह-जीवन-नव-ज्योति, प्रेम प्रकृत स्रोत तुम।
विनय-शील-उद्योग, लगन के सुकृत स्रोत तुम।
मातृभूमि के प्राण, मातृ सुख-संप्रदान तुम।
मातृ-सत्य-संत्राण-कुशल, भुज-बल-निधान तुम।
आर्य-वंश-अक्षय-वट के अभिनव प्रवाल तुम।
आर्य संत-जीवन-पट के शुचि तंतु-जाल तुम।
आर्य-धर्म-आश्रम-उपवन के फल-रसाल तुम।
आर्य-कीर्ति-तंत्री-गुण के स्वर, शब्द, ताल तुम।
निज सुजन्म-संतति सरोज-वन के मृणाल तुम।
मानव-कुल-मानस हद के मंजुल मराल तुम।
जग-मुकुट-वर भारत के सौभाग्य-भाल तुम।
प्रिय स्वदेश अंतर आत्मा के अंतराल तुम।
सुरुचि, सुबुद्धि, सुवेश सुप्रेरित-मति-विशाल तुम।
सुघर, सुपूत, सुमाता के लाड़ले लाल तुम।
भारत-साज-जहाज-सुदृढ़-शुचि-कर्णधार तुम।
भारति-कंठ-विहार विशद-मंदार-हार तुम।
निज-कर्माभिरुचि, निज भाषा-भूषा-भेष-विधाता।
निज सत्ता, निज पौरुष, निज स्वत्वों के त्राता।
निज-परता-भ्रम-रहित करो निज-हित-विचार तुम।
हित-परता-क्रम-सहित करो पर-हित-प्रचार तुम।

[illegible] क्लेश तुम।
[illegible] अभिनिवेश तुम।
[illegible] मत्रा-प्रसंग तुम।
[illegible] उमंग तुम।
[illegible] बंध तुम।
[illegible] तुम।

—

[illegible]-महिला

[illegible] कुल-प्यारी।
[illegible] जयारी।
[illegible] स्वामिनि।
[illegible] गामिनि।
[illegible] सजीवनि।
[illegible] मणि:

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] धारिणी।
[illegible] धारिणि।
[illegible] जगाओ।
[illegible] बढ़ाओ।
[illegible] त्यागो।
[illegible] त्यागो।
[illegible] कुल गामिनि।
[illegible] की स्वामिनि।

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

(जन्म संवत् १९२२)

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय उन महान् कवियों में से हैं जिनका खड़ी बोली के निर्माण में प्रभाव-शाली हाथ रहा है। इन्होंने ब्रजभाषा में भी सफलता पूर्वक सरस कविताएँ लिखी हैं। भाषा पर इनको पूर्ण अधिकार प्राप्त है। कठिन से कठिन, सरल से सरल और मुहावरेदार भाषा लिखने में ये बेजोड़ हैं। इनका 'प्रिय-प्रवास' उच्चकोटि की संस्कृत-प्राय साहित्यिक खड़ी बोली में लिखा महाकाव्य है तो 'बोल-चाल' 'चोखे चौपदे' आदि ग्रंथ मुहावरेदार साधारण बोलचाल की भाषा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। गद्य-लेखन में भी ये सिद्ध-हस्त हैं। 'ठेठ हिंदी का ठाठ' नामक इनका उपन्यास जिसमें संस्कृत और उर्दू के शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है, अपितु ठेठ हिंदी की शोभा दिखाई गई है, 'सिविल सर्विस' की परीक्षा में पाठ्य पुस्तक नियत है। शब्दों के तो ये जादूगर हैं।

'प्रिय प्रवास' महाकाव्य पर इन्हें हिंदी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा मंगलाप्रसाद पुरस्कार दिया गया है। ये दो बार हिंदी-साहित्य सम्मेलन के सभापति रह चुके हैं।

भारत के नवयुवक

जाति-धन, प्रिय नवयुवक-समूह,
विमल मानस के मंजु मराल;
        देश के परम मनोरम रत्न,
        ललित भारत-ललना के लाल।

लोक की लाखों आँखें आज,
लगी हैं तुम लोगों की ओर;
        भरी उनमें है करुणा भूरि,
        लालसामय है ललकित कोर।

उठो, लो आँखें अपनी खोल,
विलोको अवनी-तल का हाल;
        अनालोकित में भर आलोक,
        करो कमनीय कलंकित भाल।

भरे उर में जो अभिनव ओज,
सुना दो वह सुंदर झनकार;
        ध्वनित हो जिससे मानस-यंत्र,
        छेड़ दो उस तंत्री के तार।

रगों में बिजली जावे दौड़,
जगे भारत-भूतल का भाग;
        प्रभावित धुन से हो भरपूर,
        उमग गाओ वह रोचक राग।

हो सके जिससे सुगठित जाति,
सुकंठों से गूँजे वह तान;
        भाव जिनमें हों भरे सजीव,
        करो ऐसे गीतों का गान।

[illegible] -
[illegible]
[illegible] सफल [illegible]-ज्योति,
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] तुम [illegible]
[illegible]
[illegible] तुम [illegible] अनुराग
[illegible] के कहलाओ नाथ,
[illegible] अबला जन-दुख अविलंब;
सबलता करो जाति को दान,
अवश जन के होकर अवलंब।
[illegible] असहायों के सर्वस्व,
[illegible] जन की अनुपम अनुभूति,

वृद्ध जन के लोचन की ज्योति,
अकिंचन जन की विपुल विभूति।

सरस रुचि रुचिर कंठ के हार,
सुजीवन-नव-घन-मत्त-मयूर;
लोक-भावुकता तन-शृंगार,
सुजनता-भव्य-भाल सिंदूर।

भरो भूतल में कीर्ति-कलाप,
दिखा भारत-जननी से प्यार;
करो पूजन उनका पद-कंज,
बना सुरभित सुमनों का हार।

शक्ति

जिसे है मानवता का ज्ञान,
नहीं पशुता से जिसकी प्रीति;
विना त्यागे विनयन का पंथ,
लोक-नियमन है जिसकी नीति।

क्रोध जिसका है शांति-विहीन;
लोभ जिसका लालसा-विहीन,
मोह जिसका है महिमावान;
काम जिसका अकामनाधीन।

न मद में मादकता का नाम,
न तन में व्यसन-ताप का लेश;
रूप जिसका है लोक-ललाम,
अवनि-रंजन है जिसका वेश।

मस्तक पर कलंक का अंक,
न जिसका लहू भरा है हाथ;

बोला—कोई जतन वह जो आप ऐसा बतावें,
मेरे प्यारे कुँवर मुझ से आज न्यारे न होवें।
मैं बूढ़ा हूँ यदि कुछ कृपा आप चाहें दिखाना,
तो मेरी है विनय इतनी श्याम को छोड़ जावें ।
हा ! हा ! सारी ब्रज अवनि का प्राण है लाल मेरा
क्यों जीवेंगे हम सब उसे आप ले जायँगे जो ?
रत्नों की है न तनिक कमी आप लें रत्न ढेरों,
सोना-चाँदी सहित धन की गाड़ियाँ आप ले लें।
गायें ले लें गज तुरग भी आप ले लें अनेकों,
लेवें मेरे न निजधन को जोड़ता हाथ मैं हूँ।
जो है प्यारी अवनि ब्रज की यामिनी के समाना,
तो तातों के सहित सिगरे गोप हैं तारकों से ।
मेरा प्यारा कुँवर उसका एक ही चन्द्रमा है,
छा जावेगा तिमिर वह जो दूर होगा दृगों से।
सच्चा प्यारा सकल ब्रज का वंश का है उजाला,
दीनों का है परम धन औ वृद्ध का नेत्र-तारा।
बालाओं का प्रिय स्वजन औ बन्धु है बालकों का,
ले जाते हैं सुरतरु कहाँ आप ऐसा हमारा ।
बूढ़े के ये वचन सुनके नेत्र में नीर आया,
आँसू रोके परम मृदुता साथ अक्रूर बोले—
क्यों होते हैं दुखित इतने मानिये बात मेरी,
आ जावेंगे विवि दिवस में आप के लाल दोनों।
आई प्यारे निकट श्रम से एक वृद्धा-प्रवीणा,
हाथों से छू कमल-मुख को प्यार से ली बलायें।
पीछे बोली दुखित स्वर से तू कहीं जा न बेटा,
तेरी माता अहह कितनी बावली हो रही है।

दाँतों से हैं न तृण गहती हैं न बच्चे पिलाती,
हा! हा! मेरी सुरभि सब को आज क्या होगया है ?'
देखो! देखो! मचल हरि की ओर ही आ रही हैं।
रोके भी हैं न रुक सकती बावली हो गई हैं।
यों ही बातें अदुल करके वृद्ध के ग्वाल रोया,
बोला मेरे कुँवर सब को यों रुला के न जाओ।
रोता ही था जब वह तभी नन्द की सर्व गायें,
दौड़ी आयीं निकट हरि के पूँछ ऊँचा उठाये!
वे थीं स्निग्धा विपुल विकला वारि था नेत्र लाता,
ऊँची आँखों कमल मुख थी देखती शंकिता हो।
शाखानृगा सद्म-गृह के द्वार का भी दुखी था,
भूला जाता सकल-स्वर था उन्मना हो रहा था।
चिल्लाता था अति विकल था औ यही बोलता था,
यों लोगों को व्यथित करके लाल जाते कहाँ हो ?

पक्षी की औ सुरभि सब की देख ऐसी दशायें,
थोड़ी जो थी अहह! वह भी धीरता दूर भागी।

हा! हा! शब्दों सहित इतना फूट के लोग रोये,
हो जाती थी निरख जिसको भग्न छाती शिला की।

आवेगों के सहित बढ़ते देख सन्ताप-सिंधु,
धीरे धीरे व्रज-नृपति से खिन्न अक्रूर बोले—

श्री मैथिलीशरण गुप्त

[जन्म संवत्—१९४२]

गुप्त जी झाँसी ज़िले के चिरगाँव नामक स्थान में रहते हैं। खड़ी बोली के कवियों में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। आधुनिक कवियों में इनकी ही पुस्तकें जन-साधारण में सबसे अधिक प्रिय हैं। इनकी वर्णन-शैली स्पष्ट, सरस और सरल होती है। इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी हुई है। इनकी 'भारत-भारती' पुस्तक ने हज़ारों व्यक्तियों को देश का दीवाना बनाया है। ये 'कला कला के लिए' सिद्धांत के हिमायती नहीं हैं, बल्कि 'कला संसार कल्याण के लिए है' इस बात के मानने वाले हैं। इनकी रचनाओं से अंतःकरण में राष्ट्रीय भावनाएँ जाग्रत होती हैं, प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है, धार्मिक प्रवृत्ति विकसित होती है और आध्यात्मिक शांति मिलती है।

इनकी भाषा शुद्ध, सरल और प्रसाद गुणयुक्त होती है। खड़ी बोली को साहित्यिक रूप देने वालों में गुप्त जी का विशेष हाथ है। इनके 'साकेत' नामक महाकाव्य पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने मंगलाप्रसाद पुरस्कार दिया था।

इन्होंने भारत-भारती, जयद्रथवध, किसान, गुरुकुल, पलासी का युद्ध, रंग में भंग, बक-संहार, वन-वैभव, हिन्दू, शकुन्तला, तिलोत्तमा, चन्द्रहास, साकेत, यशोधरा, द्वापर, मंगलघट, झंकार और सिद्धराज आदि अनेक काव्य ग्रंथ लिखे हैं।

आगे

[illegible] भय भागे,
[illegible], आगे बढ़, आगे!
[illegible]
[illegible] कहा तू?
[illegible]
[illegible] तू
[illegible] अतृप्ति निरंतर
[illegible] आगे
[illegible] आगे बढ़, आगे!
[illegible]
[illegible],
[illegible]
[illegible]
[illegible] हृदय ये
[illegible]मय आगे
[illegible], आगे!
[illegible]
[illegible],
[illegible]
[illegible]
[illegible] आवेगा
[illegible] आगे
[illegible], आगे!
[illegible]
[illegible],

हर, तारक बन करें अमर नर,
छाई रहे अँधेरी ।
भर दृढ़ धारण, समृद्धि-धारण कर
किरण-तुल्य बढ़ आगे
आगे बढ़, आगे बढ़, आगे

एक फूल

मेरे आँगन का एक फूल !
सौभाग्य-भाव से मिला हुआ,
श्वासोच्छ्वासों से हिला हुआ,
संसार-विटपि में खिला हुआ,
झड़ पड़ा अचानक झूल-झूल !
मेरे आँगन का एक फूल !
ऊषा ने अपना उदय किया,
दीपक ने निज निर्वाण लिया,
मुझको मारुत ने जगा दिया,
देखा कि दे गया हृदय-शूल,
मेरे आँगन का एक फूल !
वह रूप कहाँ, वह रंग कहाँ,
हिलने डुलने का ढंग कहाँ,
हो गया हरे ! रस-भंग यहाँ,
रह गई गंध की हाय ! धूल,
मेरे आँगन का एक फूल !

क्षार-पारावार

छोड़ मर्यादा न अपनी, धीर, धीरज धार,
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार!
रोक सकता है तुम्हें क्या मृत्तिका का तीर!
थाम अपने आपको तू, ओ अतल गंभीर!
व्यर्थ मटमैला न हो यह नील-निर्मल-नीर,
ताप-दुःशासन-दलित भू द्रौपदी का चीर।
सुन, अमर्यादा प्रलय का खोल देगी द्वार!
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार!

ये गले, पिघले हुए पर्वत-सदृश कल्लोल,
ग्रास करने आ रहे हैं कह किसे मुँह खोल!
ये सलिल-वातूल अपने तनिक तू ही तोल,
वेग यह वेला धरा की सह सकेगी, बोल!
धीर, अपने ही हिये पर झेल उनका भार,
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार!

हाय, जल में भी जले जो, एक ऐसी आग,
जान ले तब प्राकृतिक है यह प्रबल उपराग।
उचित ही यह उफनना, यह हाँफना, ये झाग,
पर ठहर प्रभविष्णु, तू न सहिष्णुता को त्याग।
काट दे बंधन सहित सब कुछ न तेरी धार।
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार।

मथित है, हतरत्न है, फिर भी नहीं तू दीन,
देव-कार्य-निमित्त था वह योग एक नवीन।
पूछ देख, अनन्त-छवि तेरे हृदय में लीन,
अचल-सा यह विश्व है तुच्छातितुच्छ विहीन।
तू बड़े से भी बड़ा, उस त्याग को स्वीकार
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार।

क्या अमृत के अर्थ है यह भीम तेरा नाद ?
तो गरल भी तो गया फिर कौन हर्ष-विषाद ?
जानते हैं अमर मेरे क्षार जल का स्वाद,
और जगती को जलाते हैं सदा आह्लाद।
ओ मधुर-लावण्यमय तू छोड़ क्षोभ विकार
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार !

विकल है यदि तू, दिगंगन देख मंजु-मयंक,
तो निरख, उसको मिला है चपल-ऊँचा अंक।
इष्ट सबका एक सा वह, राव हो या रंक,
वह यहीं कृतकृत्य है, रह तू यहीं निःशंक।
देखकर सद्गति किसी की उचित क्या चीत्कार,
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार !

रस इसी रस में यहाँ बस, ठीक है यह बात,
किंतु इससे एक सीमा सौम्य, तेरा गात।
अंचल में अनुभूति अपनी मान तुमको तात,
सरस है सारी रसा पाकर सलिल-संपात।
मिला हुआ प्रिय भी तुम्हीं में दूर एकाकार,
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार !

वस्तुतः वह क्षोभ तेरा यह अतुल उल्लास !
हाय, उपजाती यहीं की मौज भी है त्रास।
सद्म तेजोमय किसे रवि का अरोह विकास ?
और भोलानाथ हर का हास-ताण्डव रास ?
ध्वंस के ही साथ क्या निर्माण का व्यवहार ?
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार !

शांत, ओ गंभीर, ओ उत्ताल जल-जंजाल,
व्योम तेरी ऊर्मि में, आवर्त में पाताल।

चढ़ता मैं निज नवगति ओढ़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !
हरियाली है मेरे संग,
मेरे कण-कण में -भी रंग,
फिर भी देख जगत के ढंग,
मुड़ता हूँ मैं भृकुटि मरोड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !
घर घर नव कलरव निष्पाप,
हर कर खेतों का ताप,
अपना मार्ग बनाकर आप,
जाऊँ सब कुछ पीछे छोड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !
है सब का स्वागत-सम्मान,
करे यहाँ कोई रस-पान,
मेरा जीवन गतिमय गान,
काल ! तुम्ही से मेरी होड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !

मेरा देश

बलिहारी तेरा वरवेश,
मेरे भारत ! मेरे देश
बाहर मुकुट विभूषित भाल,
भीतर जटा-जूट का जाल ।
ऊपर नभ, नीचे पाताल,
और बीच में तू प्रणपाल ।
बंधन में भी मुक्त निवेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

कभी मुरज-भय वीणावाद,
कभी स्वरों से साम-निनाद।
कभी गगनचुम्बी प्रासाद,
कभी कुटी में ही आह्लाद।
नहीं कहीं भी भय का लेश,
मेरे भारत! मेरे देश!
है तेरी कृति में विश्रांति,
भरी प्रकृति में अविचल शांति।
फटक नहीं सकती है भ्रांति,
आँखों में है अक्षय कांति,
आत्मा में है अज अखिलेश,
मेरे भारत! मेरे देश।
सरस्वती का मुख में वास,
लक्ष्मी का भी विपुल-विलास।
मिया प्रकृति का पूर्ण विकास,
फिर भी है तू आप उदास।
हे गिरीश, हे अम्बरकेश,
मेरे भारत! मेरे देश!
मस्तक में रखता है ज्ञान,
भक्ति-पूर्ण मानस में ध्यान।
करके तू प्रभु कर्म विधान,
है सत् चित् आनन्द निधान।
मेटे तूने तीनों क्लेश,
मेरे भारत! मेरे देश!
इधर विविध लीला विस्तार,
उधर गुणों का भी परिहार।

जिधर देखिए पूर्णाकार,
किधर कहें हम तेरा द्वार ?
हृदय कहीं से करे प्रवेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

तन से सब भोगों का भोग,
मन से महा अलौकिक योग।
पहले संग्रह का संयोग,
स्वयं त्याग का फिर उद्योग।
अद्भुत है तेरा उद्देश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

बन कर तू चिर साधन धाम,
हुआ स्वयं ही आत्माराम।
लिया नहीं तब तक विश्राम—
जब तक पूरा किया न काम।
दिये तुम्ही ने सब उपदेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

उर्मिला की विरह-वेदना

(१)

वेदने, तू भी भली बनी।
पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी।
नई किरण छोड़ी है तूने, तू वह हीर-कनी,
सजग रहूँ मैं, साल हृदय में, ओ प्रिय-विशिख-अनी!
ठंडी होगी देह न मेरी, रहे दृगम्बु-सनी,
तू ही उसे उष्ण रक्खेगी मेरी तपन-मनी!

अब विश्राम करें रवि-चंद्र;
फूटें नये अंकुर निस्तंद्र;
वीर, सुनाओ निज मृदुमंद्र;
कोई नई कहानी।
मेरी ही पृथिवी का पानी।

बरस पड़ा, बरसूँ मैं संग;
सरसें अवनी के सब अंग;
मिले मुझे भी कभी उमंग,
सब के साथ सयानी।
मेरी ही पृथिवी का पानी।

(४)

काली काली कोयल बोली—
होली—होली—होली !
हँसकर लाल लाल होठों पर हरयाली हिल डोली,
फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की पीली पीली चोली।
होली—होली—होली !
अलस कमलिनी ने कलरव सुन उन्मद अँखियाँ खोलीं,
मल दी ऊषा ने अंबर में दिन के मुख पर रोली।
होली—होली—होली !
रागी फूलों ने पराग से भर दी अपनी झोली,
और ओस ने केसर उनके स्फुट-संपुट में घोली।
होली—होली—होली !
ऋतु ने रवि-शशि के पलड़ों पर तुल्य प्रकृति निज तोली,
सिहर उठी सहसा क्यों मेरी भुवन-भावना भोली ?
होली—होली—होली !
गूँज उठी खिलती कलियों पर उड़ अलियों की टोली,
प्रिय की श्वास-सुरभि दक्षिण से आती है अनमोली।
होली—होली—होली !

स्वतंत्र देश के नवयुवक

(१)

शक्ति-प्रदर्शन को जब कोई,
गर्वित शत्रु प्रबल दल सजकर।
या बहु वैभव देख लोभ-वश,
कोई निठुर दस्यु सीमा पर।
आकर पल उन पर पड़ता है,
निर्भय रण-दुंदुभी बजाकर।
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर॥

(२)

क्रुद्ध सिंह सम निकल प्रकट कर,
अतुलित भुजबल विक्रम पराक्रम।
युद्ध-भूमि में वे वैरी का,
दर्प दलन कर लेते हैं दम।
या स्वतंत्रता की वेदी पर,
कर देते हैं प्राण निछावर।
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर॥२॥

(३)

या स्वदेश ही में जब कोई,
स्वेच्छाचारी निपट निरंकुश।
शासक राज-शक्ति से रक्षित,
लंपट लोलुप क्रूर कापुरुष।
निज कर्तव्य-विरुद्ध प्रजा पर,
करता है अन्याय घोरतर।

तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर!

(४)

व्यथित प्रजा के बीच वास कर,
निर्भय भावों का प्रचार कर,
सत्य-शक्ति के अवलंबन से,
शासन में निश्चित सुधार कर,
वे होते हैं हृदय-मंच पर,
या तो कारागृह के भीतर,
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर!

(५)

आता है जब फैल देश में,
कोई विषम रोग संक्रामक,
अथवा ऊपर आ पड़ता है,
जब भीषण दुर्भिक्ष अचानक,
जब जनता पुकार उठती है,
त्राहि त्राहि स्वर से अति कातर,
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर!

(६)

वे प्राणों का मोह छोड़कर,
निशि-दिन धाम रहित बन रह कर,
धर्म-भाव से प्रेरित होकर,
भूखा सोकर भूखे रह कर,

परम सुहृद बनकर समाज की,
सेवा में रहते हैं तत्पर,
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर !

भूख की ज्वाला

(१)

धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर में।
मांस नहीं है निरी मांस है शेष अस्थि-पंजर में।
अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, रहने का न ठिकाना।
कोई नहीं किसी का साथी अपना और बिगाना।

(२)

लाखों नहीं, करोड़ों ऐसे हैं मनुष्य दुख पाते।
जीवन भर जो जठरानल में जल-जल कर मर जाते।
हाय हाय कर लोग सांझ को निराहार सो जाते।
एक बार भी रात-दिवस में पेट नहीं भर पाते।

(३)

खाते हैं गम, और आँसुओं ही से प्यास बुझाते।
लेकर आयु विविध रोगों की हैं दिन-रात बिताते।
फटे-पुराने चिथड़ों ही से ढके किसी विध तन हैं।
कैसे सियें, सुई तागे से भी नितांत निर्धन हैं।

(४)

बड़े सवेरे से संध्या तक करके कठिन मजूरी।
सुख के बदले में पाते हैं आयु मजूर अधूरी।

इस जीवन के घन वन में

[illegible] खड़ा था

इस जीवन के घन वन में।

[illegible] था

[illegible] था

[illegible] था,

[illegible] था पथ निर्जन में,

इस जीवन के घन वन में।

[illegible] में

[illegible] में

[illegible]

[illegible] में।

इस जीवन के घन वन में।

श्रीयुत मुंशी अजमेरी

(जन्म संवत् १९३८—मृत्यु संवत् १९९५)

स्वर्गीय मुंशी अजमेरी यद्यपि बहुत प्रतिभाशाली कवि थे, फिर भी हिंदी जगत् उनके वास्तविक रूप को नहीं जान पाया। बाबू मैथिलीशरण गुप्त जैसे महान कवि के साथ जीवनभर रहकर मुंशी जी काव्य-साधना करते रहे और प्रकाशन से सदा बचते रहे। फिर भी जो कुछ मुंशीजी के नाम से प्रकाशित हुआ है वह उन्हें साहित्य-जगत् में ऊँचा स्थान दिलाने के लिए पर्याप्त है। भाषा पर पूर्ण अधिकार, प्रवाह और प्रसाद गुण उनकी रचनाओं के विशेष गुण हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'चित्रांगदा' का जो पद्य-बद्ध अनुवाद मुंशी जी ने किया है वह बहुत सुंदर हुआ है। उन्होंने फूलों का फंदा, शाही कुँड़ा, हेमलता, गोकुलसिंह, मधुकरशाह, रामकथा, सत्सूराम सत्सूराम-प्रचार आदि पुस्तकें तथा फुटकर रचनाएँ भी लिखी हैं। उनका हाल ही में स्वर्गवास हो गया। जाति के मुसलमान होते हुए भी वे संस्कृति से हिंदू जान पड़ते थे।

[illegible]किल, बोलो तो !

[illegible] वाली हो—कोकिल, बोलो तो!
[illegible] है—कोकिल, बोलो तो!
[illegible] के घेरे में,
[illegible] के डेरे में,
[illegible] आना,
[illegible] रह जाना,
[illegible] कड़ा पहरा है,
[illegible] का प्रभाव गहरा है,
[illegible] भी काली:
[illegible] क्यों आली ?
[illegible] भा—कोकिल, बोलो तो!
[illegible] भी—कोकिल, बोलो तो!

[illegible] आमों का,
[illegible] का,
[illegible] का.

या वायु-विटप वल्लरी चीर हठ ठाने,
दीवार चीरकर अपना स्वर अजमाने,
या लेने आई मम आँखों का पानी,
नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी!
क्या अंधकार करते ये जग-रखवाली,
क्या उनकी आभा तुझे न भाई आली?
तुम रवि किरणों से खेल जगत को रोज जगाने वाली—
कोकिल, बोलो तो!
क्यों अर्धरात्रि में विश्व जगाने आई हो मतवाली—
कोकिल, बोलो तो!
दूबों के आँसू धोती, रवि-किरणों पर,
मोती बिखराते विन्ध्या के झरनों पर,
ऊँचे उठने के व्रतधारी इस वन पर,
ब्रह्माण्ड कँपाते उस उद्दंड पवन पर,
तेरे मीठे गीतों का पूरा लेखा,
मैंने प्रकाश में लिखा सजीला देखा,
जब सर्वनाश करती क्यों हो? तुम जाने या बे-जाने—
कोकिल, बोलो तो!
क्यों तमोरात्रि पर विवश हुई लिखने मधुरीली तानें—
कोकिल, बोलो तो!
क्या देख न सकती जंजीरों का गहना?
हथकड़ियाँ क्यों? यह पारतंत्र्य का गहना!
गिट्टी पर? अँगुलियों ने लिक्खे गान!
कोल्हू का चरसा चूँ?—जीवन की तान।
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ,
खाली करता हूँ दुर्दिन अकड़ का कूँआ।

देख विषमता तेरी मेरी,
बजा रही तिस पर रणभेरी!
इस हुंकृति पर अपनी कृति से, और कहो क्या कर दूँ?—
कोकिल बोलो तो!
मोहन के व्रत पर, प्राणों का आसव किस में भर दूँ?—
कोकिल, बोलो तो!
फिर कुहू—अरे क्या बंद न होगा गाना,
इस अंधकार में मधुराई दफनाना!
नभ सीख चुका है कमजोरों को खाना,
क्यों बना रहा अपने को उसका दाना!
तिस पर, करुणा-गाहक बंदी सोते हैं,
स्वप्नों में स्मृतियाँ श्वासों से धोते हैं।
सीखचे-कड़ियाँ तोड़ूँ की पाली से,
क्या भर देगी! बोलो निंद्रित लाली से,
क्या तुम आओगी करने तुमुल निनादों के इगा—
कोकिल, बोलो तो!
और प्रात के हो आवेगा वसु-कुसुम उग आया—
कोकिल, बोलो तो!

बाबू जयशंकर प्रसाद

(जन्म संवत् १९४६ । मृत्यु संवत् १९९४)

आप काशी के प्रतिष्ठित जमींदार, रईस तथा संस्कृत-विद्या के प्रेमी बाबू देवीप्रसाद सुंघनी साहु के सुपुत्र थे। आपकी बचपन से ही साहित्य की ओर रुचि थी। आप छायावादी कविता के प्रवर्तक करने वाले माने जाते हैं। [illegible] रचना भी सबसे पहले आपने ही लिखी थी।

काव्य के क्षेत्र में प्रसाद जी का हिंदी के सभी आधुनिक कवियों में अपना और प्रतिष्ठित स्थान है। आपकी रचनाओं में नवीनता के साथ-साथ ही प्राचीनता की मधुरता भी है। [illegible] के जीवन और साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा है और आपकी रचनाओं में प्राचीन संस्कृति का बहुत आकर्षण दीख पड़ता है। [illegible] और अन्य आपकी कविताओं के विशेष गुण हैं। [illegible] आपकी [illegible] संस्कृतमयी [illegible] कुछ [illegible] है। कुछ लोगों को आपकी कई रचनाएँ [illegible] है, [illegible] कुछ ने आपकी [illegible] [illegible] है और कुछ [illegible] किन्तु जो आपकी [illegible] [illegible] आपकी कविताओं [illegible] होता है।

प्रारंभ में आपने भी कुछ ब्रजभाषा की तथा कुछ प्रारंभिक काल के खड़ी बोली के कवियों की कविताओं जैसी रचनाएँ लिखी थीं, पर धीरे-धीरे आपकी शैली, भाव और भाषा ने पलटा खाया और हिन्दी-काव्य को आपने नए ही प्रकार के फूलों से सजा दिया।

आपके 'कामायनी' नामक महाकाव्य पर हिंदी-साहित्य सम्मेलन ने आपकी मृत्यु के अनंतर मंगलाप्रसाद पुरस्कार दिया है।

आपके काव्य-ग्रंथों में 'महाराणा का महत्त्व', 'प्रेम-पथिक', 'कानन-कुसुम', 'लहर', 'झरना', 'आँसू' और 'कामायनी' आदि प्रसिद्ध हैं। कवि के अतिरिक्त आप सफल नाटक-कार, कहानी-लेखक और उपन्यासकार भी थे। केवल ४० वर्ष की आयु में ही आपकी असामयिक मृत्यु हो गई।

तेरा विषाद द्रव तरल-तरल
मूर्छित न रहे ज्यों पिये गरल,
सुख-लहर उठा री सरल-सरल
लघु-लघु सुंदर-सुंदर अविरल,
—तू हँस जीवन की सुघराई।
हँस, झिलमिल हो लें तारा-गन,
हँस, खिलें कुंज के सकल सुमन,
हँस, बिखरें मधु-मरंद के कन,
बन कर संसृति के नव श्रम कन;
—सब कह दें 'वह राका आई!'
हँस लें भय शोक प्रेम या रण,
हँस ले काला पट ओढ़ मरण,
हँस लें जीवन के लघु लघु क्षण,
देकर निज चुंबन के मधुकण,
नाविक अतीत की उतराई!

अरी वरुणा की शांत कछार !

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !
सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन कुंज !
जगत नश्वरता के लघु त्राण, लता, पादप, सुमनों के पुंज !
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।
स्वर्ग की वसुधा से शुचि संधि, गूँजता था जिससे संसार !
अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

आँसू

इस करुणा-कलित हृदय में क्यों विकल रागिनी बजती?
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती?
क्यों छलक रहा दुख मेरा ऊषा की मृदु पलकों में?
हाँ! उलझ रहा सुख मेरा संध्या की घन अलकों में।
बस गई एक बस्ती है स्मृतियों की इसी हृदय में;
नक्षत्र-लोक फैला है जैसे इस नील निलय में।

× × × ×

चातक की चकित पुकारें, श्यामा-ध्वनि सरल रसीली;
मेरी करुणार्द्र-कथा की टुकड़ी आँसू से गीली।
बाड़व-ज्वाला सोती थी इस प्रेम-सिंधु के तल में,
प्यासी मछली-सी आँखें थीं विकल रूप के जल में।
नीरव मुरली, कलरव चुप, अलि-कुल थे बंद नलिन में,
कालिंदी बही प्रणय की इस तममय हृदय-पुलिन में।
हिल-हिलकर छाले फोड़े मल-मल कर मृदुल चरण से
घुल-घुल कर बह रह जाते आँसू करुणा के कण से।

याचना

१

जब प्रलय का हो समय ज्वालामुखी निज मुख खोल दे,
सागर उमड़ता आ रहा हो शक्ति-साहस बोल दे।
ग्रहगण सभी हों केन्द्र-च्युत लड़कर परस्पर भग्न हों,
उस समय भी हम हे, प्रभो! तव पद्म-पद में लग्न हों॥

२

जब शैल के सब शृंग विद्युद्-वृन्द के आघात से,
हों गिर रहे भीषण मचाते विश्व में व्याघात से।
जब घिर रहे हों प्रलय-घन अवकाश-गत आकाश में,
तब भी प्रभो ! यह मन खिंचे तव प्रेम-धारा-पाश में।

३

जब क्रूर षड्-रिपु के कुचक्रों में पड़े यह मन कभी,
जब दुःख की ज्वालावली हो भस्म करती सुख सभी।
जब हों कृतघ्नों के कुटिल आघात विद्युत्पात से,
जब स्वार्थी दुःख दे रहे अपने मलिन छलछद्म से॥

४

जब छोड़ कर प्रेमी तथा सन्मित्र सब संसार में,
इस घाव पर छिड़कें नमक हो दुख खड़ा आकार में।
करुणानिधे ! हों दुःख-सागर में कि हम आनंद में।
मन-मधुप हो विघ्न-प्रमुदित तव चरण-अरविंद में॥

५

हम हों सुमन की सेज पर या कंटकों की आड़ में,
पर प्राणधन ! तुम छिपे रहना, इस हृदय की आड़ में।
हम हों कहीं, इस लोक में, उस लोक में, भूलोक में,
तव प्रेम-पथ में ही चलें, हे नाथ ! तव आलोक में॥

तत्वों और भावनाओं से भरे हुए हैं। इनके गीतों का एक संग्रह 'गीतिका' के नाम से प्रकाशित हुआ है। संगीत-शास्त्र में भी ये प्रवीण हैं।

इन्होंने अनामिका, परिमल, गीतिका और तुलसीदास नामक काव्य-ग्रंथ लिखे हैं। अप्सरा, अलका, निरुपमा और प्रभावती नामक उपन्यास और उषा नामक नाटिका तथा इनके अतिरिक्त और विविध विषय की पुस्तकें लिखी हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि निराला जी हिंदी जगत् में आँधी की भाँति आए और कविता की प्राचीन परिपाटियों को तोड़ने-फोड़ने में निरंतर लगे रहे। इनकी कविताएँ इनके संघर्षमय जीवन के चित्र हैं, उनमें हृदय की सूक्ष्म और वेदना की भावनाओं की अनुभूति है।

बादल राग

ऐ निर्बंध !
अंध-तम-अगम-अनर्गल—बादल !
ऐ स्वच्छंद !—
मंद-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण !
                    बाधा-रहित-विराट !
ऐ विप्लव के प्लावन !
                    सावन घोर गगन के
                    ऐ सम्राट !
ऐ अटूट पर छूट टूट पड़ने वाले—उन्माद !
विश्व-विभव को लूट लूट लड़ने वाले—अपवाद !
श्री बिखेर, मुख-फेर कली के निष्ठुर पीड़न !
छिन्न-भिन्न कर पत्र-पुष्प-पादप-वन-उपवन,
वज्रघोष से ऐ प्रचंड !
आतंक जमाने वाले !
कंपित जंगम,—नीड़ विहंगम
                    ऐ न व्यथा पाने वाले !

नभ के मायामय आँगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर !

× × × ×

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर !
राग-अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

झर झरझर निर्झर-गिरि-सर में
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में;
सरित—तड़ित-गति—चकित पवन में,
मन में, विजन-गहन-कानन में,
आनन-आनन में, रव-घोर-कठोर—
राग-अमर! अम्बर में भर निज रोर!
    अरे वर्ष के हर्ष!
    बरस तू बरस-बरस रसधार!
    पार ले चल तू मुझको,
    बहा, दिखा मुझको भी निज
    गर्जन-भैरव संसार!

उथल-पुथल हृदय—
मचा हलचल—
    चल रे चल,—
    मेरे पागल बादल!
धँसता दलदल,
हँसता है नद खल्‌खल्‌,
बहता, कहता कुलकुल कलकल कलकल
देख, देख नाचता हृदय
बहने को महा विकल—बेकल,
इस मरोर से—इसी शोर से—
सघन घोर गुरु गहन रोर से
मुझे—गगन का दिखा सघन वह छोर!
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर!

तुम और मैं

तुम तुंग हिमालय-शृंग,
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता ।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी कविता ॥
तुम प्रेम और मैं शान्ति,
तुम सुरापान घन-अन्धकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति,
तुम दिन कर के खर किरण-जाल,
मैं सरसिज की मुसकान ।
तुम वर्षों के बीते वियोग,
मैं हूँ पिछली पहचान ॥
तुम योग और मैं सिद्धि,
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि ।
तुम मृदु मानस के भाव,
और मैं मनोरंजिनी भाषा ।
तुम नन्दन-वन-घन विटप,
और मैं सुख-शीतल-तल शाखा ॥
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया ।
तुम प्रेममयी के कण्ठहार,
मैं वेणी काल-नागिनी ।
तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार,
मैं व्याकुल विरह-रागिनी ॥

वृत्ति

देख चुका जो-जो आए थे
चले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब,
भले गए !
क्षण-भर की भाषा में
नव-नव अभिलाषा में,
उगते पल्लव-से कोमल शाखा में,
आए थे जो निष्ठुर कर से
मले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए !
चिंताएँ, बाधाएँ;
आती ही हैं, आएँ;
अन्ध हृदय है, बन्धन निर्दय लाएँ,
मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे
छले गए !
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए !

क्या गाऊँ ?

क्या गाऊँ ?—माँ ! क्या गाऊँ ?
गूँज रही हैं जहाँ राग-रागिनियाँ
गाती हैं किन्नरियाँ—कितनी परियाँ,
कितनी पंचदशी कामिनियाँ,

यहाँ एक यह लेकर वीणा दीन,
तंत्री क्षीण—नहीं जिसमें कोई झंकार नवीन,
रुद्ध कंठ का राग अधूरा कैसे तुझे सुनाऊँ ?
माँ !—क्या गाऊँ ?
छाया है मंदिर में तेरे यह कितना अनुराग !
चढ़ते हैं चरणों पर कितने फूल
मृदु-दल सरस-पराग;
गंध-मोद-मद पीकर मंद समीर
शिथिल चरण जब कभी बढ़ाती आती,
सजे हुए बजते उसके अधीर नूपुर-मंजीर !
यहाँ एक निर्गंध कुसुम उपहार,
नहीं कहीं जिसके पराग-संचार सुरभि-संसार ॥
कैसे भला चढ़ाऊँ ?
माँ ! क्या गाऊँ ?

मेरे प्राणों में आओ

मेरे प्राणों में आओ !
शत शत, शिथिल, भावनाओं के
उर के तार सजा जाओ !
गाने दो प्रिय, मुझे भूल कर
अपनापन—अपार अग सुंदर,
खुली करुण उर की सीपी पर
स्वाती-जल नित बरसाओ !
मेरी मुग्धायें प्रकाश में
चमकें अपने सहज हास में,
इनके अचपल भ्रू-विलास में
लाज-रंग-रस सरसाओ !

मेरे स्वर की अनल-शिखा में
जला सकल जग जीर्ण दिशा में
हे अरूप, नव-रूप-विभा के
चिर स्वरूप पा के जाओ!

तेरे चरणों पर

नर-जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हों तेरे चरणों पर, माँ,
मेरे श्रम-संचित सब फल।
जीवन के पथ पर चढ़कर,
सदा मृत्यु-रथ पर बढ़कर,
महाकाल के खरतर शर सह
सकूँ, मुझे तू कर दृढ़तर;
जागे मेरे उर में तेरी
मूर्ति अश्रुजल-धौत विमल,
दृग-जल से पा बल, बलि कर दूँ
जननि, जन्म-श्रम-संचित फल!
बाधाएँ आयें तन पर,
देखूँ तुझे, नयन-मन भर,
मुझे देख तू सजल दृगों से,
अपलक, उर के शतदल पर,
क्लेदयुक्त अपना तन दूँगा,
मुक्त करूँगा तुझे अटल,
तेरे चरणों पर देकर बलि,
सकल श्रेय—श्रम-संचित फल!

आवाहन

एक बार बस और नाच तू श्यामा !
सामान सभी तैयार,
कितने ही हैं असुर, चाहिए कितने तुझको हार ?
कर-मेखला मुंड-मालाओं से बन मन-अभिरामा—
एक बार बस और नाच तू श्यामा !
भैरवी भेरी तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझ से पंजा,
लेगी खड्ग और तू खप्पर,
उसमें रुधिर भरूँगा माँ
मैं अपनी अंजलि भर भर;
उँगली के पोरों में दिन गिनता ही जाऊँ क्या माँ—
एक बार बस और नाच तू श्यामा !
अट्टहास-उल्लास-नृत्य का होगा जब आनंद,
विश्व की इस वीणा के टूटेंगे सब तार,
बंद हो जाएँगे ये सारे कोमल छंद,
सिंधु-राग का होगा तब आलाप,—
उत्ताल-तरंग-भंग में होंगे
माँ, मृदंग के सुस्वर किया-कलाप,
और देखूँगा देते ताल
कर-तल-पल्लव-दल से निर्जन वन से सभी तमाल,
निर्झर के झर झर स्वर में तू सरिगम मुझे सुना माँ
एक बार बस और नाच तू श्यामा !

नौका-विहार

(कालाकाँकर में गंगा की धारा में)

शांत, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल!
अपलक अनंत, नीरव भू-तल!
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रांत, क्लांत निश्चल!
तापस बाला गंगा निर्मल शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुंदर
चंचल अंचल सा नीलांबर।
साड़ी की सिकुड़न सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहर।
चाँदनी रात का प्रथम प्रहर,
हम चले नाव लेकर सत्वर।
सिकता की सस्मित-सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो, पालें बँधीं, खुला लंगर।
मृदु मंद, मंद, मंथर, मंथर, लघु तरणि, हंसिनी सी सुंदर
तिर रही, खोल पालों के पर।
निश्चल जल के शुचि दर्पण पर, बिंबित हो रजत पुलिन निर्भर
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर।
कालाकाँकर का राज-भवन सोया जल में निश्चिंत, प्रमन
पलकों में वैभव-स्वप्न सघन।
नौका से उठती जल हिलोर,
हिल पड़ते नभ के ओर छोर।

निखिल पलकों का मौन पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण !
विपुल-वासना-विकच विश्व का मानस शतदल
छान रहे तुम, कुटिल काल-कृमि से घुस पल पल;
तुम्हीं स्वेद-सिंचित संसृति के स्वर्ण शस्य दल
दलमल देते वर्षोपल बन, वांछित कृषिफल !
अये ! सतत ध्वनि स्पंदित जगती का दिङ्मंडल !
नैश गगन-सा सकल,
तुम्हारा ही समाधि-स्थल।

(४)

काल का अकरुण-भृकुटि विलास
तुम्हारा ही परिहास;
विश्व का अश्रु-पूर्ण इतिहास !
तुम्हारा ही इतिहास !
एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयकर
समर छेड़ देता निसर्ग संसृति में निर्भर !
भूमि चूम जाते अभ्र ध्वज सौध, शृंगवर,
नष्ट भ्रष्ट साम्राज्य—भूति के मेघाडंबर।
अये, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भूकंपन,
गिर गिर पड़ते भीत पक्षि पोतों से उडुगन !
आलोड़ित अंबुधि फेनोन्नत कर शत शत फन,
मुग्ध भुजंगम-सा इंगित पर करता नर्तन !
दिक् पिंजर में बद्ध, गजाधिप-सा विनतानन,
वाताहत हो गगन
आर्त करता गुरु गर्जन !

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए।

माता की छाती का अमृत-
मय पय काल-कूट हो जाए,
आँखों का पानी सूखे,
वे शोणित की घूँटें हो जाएँ,
एक ओर कायरता काँपे,
गतानुगति विगलित हो जाए,
अन्धे मूढ़ विचारों की वह,
अचल शिला विचलित होजाए,
और दूसरी ओर कँपा देने
वाला गर्जन उठ धाए,
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक
तर्जन की ध्वनि मँडराए,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए!

नियम और उपनियमों के ये
बंधन टूक-टूक हो जाएँ,
विश्वंभर की पोषक वीणा
के सब तार मूक हो जाएँ,
शांति-दंड टूटे उस महा-
रुद्र का सिंहासन थर्राए,
उसकी श्वासोच्छ्वास-दाहिका
विश्व के प्रांगण में घहराए,
नाश! नाश!! हा महानाश!!! की
प्रलयंकरी आँख खुल जाए,

"दिल को मसल मसल मैं मेंहदी
रचना आया हूँ, यह देखो,
एक-एक अंगुलि-परिचालन
में नाशक ताँडव को पेखो!

विश्वमूर्ति! हट जाओ!! मम
भीम प्रहार सहे न सहेगा,
टुकड़े टुकड़े होजाओगी,
नाममात्र अवशेष रहेगा;

आज देख आया हूँ—जीवन
के सब राज़ समझ आया हूँ;
भ्रू-विलास में महानाश के
पोषक सूत्र परख आया हूँ;

जीवन-गीत भुला दो—कंठ
मिला दो मृत्यु-गीत के स्वर से,
यह गीत की क्षुद्र तान है
निकली मेरे अन्तर-तर से।

रुन-झुन-झुन

रुन-झुन-झुन रुनुन झुनुन रुनुन झुनुन
मेरे साजन की पैंजनियाँ
जाग रही मेरी अँखियाँ;
चौंक आकर धीरे-धीरे
सुन ले तू मेरी झनकारें!
ना जानूँ कैसे बना है यह धन आली पैंजनियन [illegible]
रुन झुन-झुन रुनुन झुनुन रुनुन झुनुन
पैंजनियों की [illegible] के [illegible] में [illegible]
[illegible] यह आती है [illegible]

[illegible] मुट्ठा म वह डोले
[illegible] मातृभाषा को ।
[illegible] किंकिनियों से बजता टुन टुन।
[illegible] गुनुन कनुन मुनुन॥
[illegible] गाथा में मिला रही हूँ मैं,
[illegible] भावों को मिला रही हूँ मैं।
[illegible] झंकारों की धारा
[illegible] म बही दुधारा;
[illegible] करती है
[illegible] 'नमाला दुलारा ।
[illegible] की सुस्थिर गुंजन धुन।
[illegible] गुनुन मनुन झुनुन॥

[illegible] का सुख

[illegible] कहाँ तुम्हारा नाम ?
[illegible] रानी सुकुमार ?
[illegible] रानी विदेश दूषणनी नाम,
[illegible] अनु-रंजिता विशाल।
[illegible] में आई आज,
[illegible] का हरित समाज।
[illegible], नव विस्तार आकार,
[illegible] का कृष [illegible];
[illegible] वह [illegible],
[illegible] को [illegible] पीर,
[illegible] का विरल दृश्य,
[illegible] कुसुम [illegible] ।

चढ़ चल, चढ़ चल, थक मत रे तू बलिदानों के पुंज,
देख कहीं न लुभावे तुमको यह जीवन की कुंज,
मधुर मृत्यु का नृत्य देख तू देने लग जा ताल,
अपना सीस पिरोकर कर दे पूरी माँ की माल,
है जीवन अनित्य, कट जाने दे तू मोहक बंध,
कर दे पूरा आज मरण का तू अपना सुप्रबंध।

विश्व-रूप

मत मर्म-व्यथा छूने, विद्युत् बन, आओ;
घन निविड़ श्याम-घन प्राणों में छा जाओ!
किरणों की उलझन क्षणिक न बनो सवेरा;
बन निशा छुपा दो छवि में जीवन मेरा।
अस्थिर जीवन-कण बन न नयन ललचाओ,
बन शांत मरण-सागर असीम लहराओ!
जो टूट पड़े क्षण में विनाश इंगित पर,
वह तारक बन मत ध्यान भंग कर जाओ;
जिसकी अंचल-छाया में सोवे त्रिभुवन,
वह अंतहीन आकाश नील बन आओ।
फिर उसी रूप से नयनों को न भुलाओ;
अभिनव अपूर्व छवि जीवन को दिखलाओ!
दर्शन-सुख की परिभाषा नई बनाओ,
लघु दृग-तारों में नहीं हृदय में आओ!
वह विश्वरूप बन आओ, मेरे, सुंदर!
जो रेखाओं का बंदी बने न पट पर;
जिसको भर रखने को तप कर जीवन भर
भर बने एक दिन अंतहीन नीलाम्बर
अनुभव को दृग तक ही सीमित न बनाओ;
छवि से जीवन के अणु अणु को भर जाओ
हर झांकी में विस्तृततर बनकर आओ;
जग के प्राणों की प्रतिक्षण परिधि बढ़ाओ!

धीरे-धीरे युग-परिवर्तन
की आहट आती जाती है;
गहन घटा-सी क्षितिज-पटल पर
घिर-घिर कर छाती जाती है।

क्या अगले तूफ़ानों में तू
अपना भार सँभाल सकेगा ?
एकाकी असहाय नारा की
वेला कब तक टाल सकेगा ?

तेरे सिंहासन के नीचे
कुचले जाने वाले जागे !
वे भी बढ़ना चाह रहे हैं
अब तो जीवन-पथ पर आगे !

उनके मुक्ति-गीत के स्वर में
अपना हृदय मिलाएगा तू—
या उत्कट युग के प्रवाह को
रोक स्वयं बह जाएगा तू !

कुञ्ज का कुञ्ज

घर-घर गाने चली भक्ति जब
गिरि की दृढ़ता का गुण-गान,
उमी हास, उर धीर, प्रेम की
गंगा फूट पड़ी गतिमान;

गायक कुँभला जाता है,
हाय, युगों के संचय ! क्यों तू
पल भर में बह जाता है।

केवल तुम्हीं देख पाते हो उर की आँखों से उर में,
स्वर की नभ-चुंबी डोरों से उतर समुद अंतःपुर में।
कितनी सुरभि, सुधा-मधु कितना, कितनी छवि, कितना संगीत,
कितना सुख, कितनी मादकता, कितना स्नेह, प्रकाश, प्रतीति,
इन छोटे-से प्राणों में 'प्रिय' एक साथ भर जाते हैं।
तरु के तले बटोही केवल एक गान सुन पाते हैं।
त्रिभुवन का आलोक तुम्हारे अंतर में भर जाता है।
अतः बाहरी जग में तुमको तिमिर शेष रह जाता है।

२

मूक चित्रकार

उषा, तारिका, इन्द्रधनुष में, नीरव लहराते जल में,
कहता है कुछ चन्द्र-किरण में, कुछ नभ में, कुछ बादल में।
फूलों के रंगीन मौन में मंद स्मित भाषा बन कर,
उर के अनुभव-सा धीरे से खिलता है जो चिर-सुंदर।
उसी भुवन नायक की भाषा—मौन, तुम्हारी है भाषा,
तुम रंगीन विश्व के राजा नीरव-जगती की आशा।

× × × ×

नयनों के नंदन-वन में, हे चित्रकार, भरमा कर,
रच लेते हो त्रिभुवन की भाषा को मूक बनाकर।

× × × ×

जहाँ नहीं झंकार स्वरों की शब्दों का विस्तार नहीं।
रंगों का संभार नहीं रेखाओं का आकार नहीं।
वहीं इन्हीं नयनों में छवि बन हो उठता है व्यक्त अजान,
यह युग-युग का मूक हृदय, ये जन्म जन्म के नीरव प्राण।

× × × ×

पदक्षेप में अगणित त्रुटियाँ गिनते रहते हैं रज-कण,
पर तुम चलते ही जाते हो पथ पर पागल से प्रतिक्षण।
जग के कलुषित कोलाहल में सदा सुरक्षित है 'सुंदर',
श्रवणों पर पट डाल, हृदय में छिपा रखा प्रियतम का स्वर
वही अमर स्वर- गूँज रहा है आदि काल से प्राणों में,
अतः 'शून्य' अनुभव करते हो मर्त्य जगत् के गानों में।

अनुरोध

जीवन-पथ की अमिट अमावस
बने निमिष में स्वर्ग-समान,
बिखरा दो उदार अधरों में
किरणों की उज्ज्वल मुसकान
एक अनिंद्य रूप की ज्वाला,
देवि, जला दो त्रिभुवन में,
जिसमें अशिव, असत्य, असुंदर;
हो सब भस्म एक क्षण में।
रँग दो मेरे स्वप्न, सजनि, सब
जीवन-मरण अरुण कर दो—
जन्म-जन्म का शून्य पात्र यह
आज बूँद भर में भर दो।

जीवन-दीप

जिसकी एक झलक पाती तो
रवि-शशि की पलकें झुक जाती,
पूर्ण पयोनिधि की मादकता
मधु की दो लघु बूँदें पाती,

बिखरी वीणाएँ अम्बर में
महामिलन का स्वर भर आतीं,
एक एक शतदल के उर में
लाख-लाख आँखें खुल जातीं,
वही प्रकाश, इसी में छिप कर,
मुझ में जब देते हो भर,
मेरा लघुतम जीवन-दीपक
कह उठता है विस्मित हो कर—
क्या इसलिए कि फैला हूँ मैं
कण-कण में प्रकाश की प्यास,
लघुतम स्नेह-पात्र में, प्रियतम,
भर देते हो परम प्रकाश।

जागो

जागो जागो हे धनवान !
हे धनवान, हे नादान !
जागो जागो हे धनवान !
देख देख सोने की कड़ियाँ,
मत समझो वैभव की लड़ियाँ,
भोले बनी, खोलो बेड़ियाँ,
आखिर हैं वे भी हथकड़ियाँ,
बंधन है जिनकी पहचान !
जागो जागो हे धनवान !
हे धनवान, हे नादान

अधमुने दृगों के कंजकोर—
पर छाया विस्मृति का खुमार;
रँग रहा हृदय में अश्रुश्याम
वह चतुर चितेरा सुधिविहान !

मुरझाया फूल

था कली के रूप शैशव में अहो सूखे सुमन,
हास्य करता था, खिलाता अंक में तुमको पवन !
खिल गया जब पूर्ण तू मंजुल सुकोमल पुष्पवर,
लुब्ध मधु के हेतु मँडराने लगे आने भ्रमर !
स्निग्ध किरणें चन्द्र की तुमको हँसाती थीं सदा,
रात तुम पर वारती थी मोतियों की संपदा !
लोरियाँ गा कर मधुप निद्रा विवश करते तुझे
यत्न माली का रहा आनन्द से भरता तुझे !
कर रहा अठखेलियाँ इतरा सदा उद्यान में,
अन्त का यह दृश्य आया था कभी क्या ध्यान में ?
सो रहा तू अब धरा पर शुष्क बिखराया हुआ,
गन्ध कोमलता नहीं मुख मंजु मुरझाया हुआ।
आज तुमको देख कर चाहक भ्रमर आता नहीं,
लाल अपना राग तुझ पर प्रात बरसाता नहीं!
जिस पवन ने अंक में ले प्यार था तुमको किया
तीव्र झोंके से सुला उसने तुझे भू पर दिया।
कर दिया मधु और सौरभ दान सारा एक दिन,
किंतु रोता कौन है तेरे लिए दानी सुमन ?
मत व्यथित हो फूल ! किस को सुख दिया संसार ने ?
स्वार्थमय सबको बनाया है यहाँ करतार ने !

दुख हो सुखमय सुख हो दुखमय,
उपल बनें पुलकित से निर्झर;
मरु हो जावे उर्वर गायक!

मैं

शलभ मैं शापमय वर हूँ!
किसी का दीप निष्ठुर हूँ!
ताज है जलती शिखा
चिनगारियाँ शृंगार-माला;
ज्वाल अक्षय कोष सी
अंगार मेरी रंगशाला;
नाश में जीवित किसी की साध सुंदर हूँ!
नयन में रह किंतु जलती
पुतलियाँ आगार होंगी;
प्राण में कैसे बसाऊँ
कठिन अग्नि-समाधि होगी;
फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु-मंदिर हूँ।
हो रहे झर कर दृगों से
अग्नि-कण भी क्षार शीतल,
पिघलते उर से निकल
निश्वास बनते धूम श्यामल;
एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ!
कौन आया था न जाना
स्वप्न में मुझको जगाने;
याद में उन अँगुलियों के
हैं मुझे पर युग बिताने;
रात के उर में दिवस की चाह शर हूँ ! कारा

शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सबेरा
प्राण आकुल के लिए
संगी मिला केवल अँधेरा
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ

दीपक जल

मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर!
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल!

पुलक पुलक मेरे दीपक जल!
सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझ से ज्वाला-कण,
विश्वशलभ सिर धुन कहता 'मैं
हाय न जल पाया तुझ में मिल!'

सिहर सिहर मेरे दीपक जल!
जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता
विद्युत् ले घिरता है बादल!

विहँस विहँस मेरे दीपक जल!
द्रुम के अंग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयंगम;

वसुधा के जड़ अन्तर में भी.
बंदी है तापों की हलचल !

बिखर बिखर मेरे दीपक जल !
मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर;
मैं अंचल की ओट किए हूँ;
अपनी मृदु पलकों से चंचल !

सहज सहज मेरे दीपक जल !
सीमा ही लघुता का बंधन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन;
मैं दृग के अक्षय कोषों से—
तुझमें भरती हूँ आँसू-जल

सजल सजल मेरे दीपक जल !
तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेंगे नव खेल निरंतर;
तम के अणु अणु में विद्युत् सा—
अमिट चित्र अंकित करता चल !

सरल सरल मेरे दीपक जल !
तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल !

मंदिर मंदिर मेरे दीपक जल
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

श्री सियारामशरण गुप्त

(जन्म संवत १९५२)

बाबू सियारामशरण गुप्त मैथिलीशरण जी के छोटे भाई हैं। आपने भी काव्य-जगत् में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना लिया है। आप स्वयं बहुत सरल और निच्छल प्रकृति के मनुष्य हैं, आपकी कविताएँ भी सरल, स्पष्ट और हृदय को छूने वाली होती हैं। भावनाओं, भाषा, छंद, और शैली में आप अन्य कवियों से भिन्न हैं, मौलिक हैं।

कौटुंबिक और सामाजिक संबन्धों का बहुत ही मार्मिक वर्णन आप की रचनाओं में मिलता है। इस दिशा में हिंदी का कोई भी वर्तमान कवि आपको नहीं पाता। आध्यात्मिक भावनाओं से भरी हुई कविताएँ भी आपने लिखी हैं, पर उनकी कल्पना इतनी जटिल नहीं कि सर्व साधारण को आनन्द न आवे। करुण-रस का परिपाक तो आपकी कविताओं में खूब हुआ है।

आपकी प्रतिभा बहुमुखी है। आपने कविता, कहानियाँ, नाटक, उपन्यास सभी कुछ लिखा है। आपकी निम्नलिखित रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं—

काव्य—मौर्य-विजय, अनाथ, आर्द्रा, दूर्वा-दल, आत्मोत्सर्ग, पाथेय, दूरागत गान।

कहानियाँ—कोटर, कुटीर, मानुषी।

पन्यास—गोद।

उनाटक—पुण्य-पर्व।

हो गई होंगी तदपि त्रुटियाँ अनेक;
भान भी जिनका नहीं मन में कुछेक।
उन प्रमादों के कुटिल-कंटक कड़े
गेह में यदि हों यहाँ फैले पड़े,
साथ ही मेरे सभी उठ जाँय वे;
बाद मेरे, फिर न चुभने पाँय वे
पूज्य स्वजनों के मृदुल हृद्धाम में;
हो न फिर पीड़क किसी भी काम में।
कौन जाने, किस नगर, किस गेह में,
लालिता माता-पिता के स्नेह में,
भाग्यशीनी रूपसी वह है कहाँ,
आयगी मेरे अनन्तर जो यहाँ;
हृदय-धन का हृदय हरणानी हुई,
दीप्तिमय नव-दीप्ति बरसाती हुई।
चाहती हूँ, तू सुखी हो हे बहन!
शोक यदि आ जाय इस घर में गहन,
तो उसे तू छिन्न कर देगी स्वयं;
दुःख तम भी शीघ्र हर लेगी स्वयं।
आज स्वामी आयेंगे जब जिस समय,
त्याग कर संपूर्ण चिंता, क्लेश, भय,
मौन रह, कुछ दूसरे ही भाव से
उन पदों पर मैं पड़ूँगी चाव से
आज का वह स्पर्श मेरा हो न लीन,
आज के ही दिन,—रहे वह चिर नवीन!
वे न जान सकें, तदपि होकर अभंग,
वह सदा सेवन करें वह पुण्य संग।

रहे किसी मधु-मास के गुंजार में,
सजल-सावन के सरस संचार में,
आग यह सहसा उन्हें कर दे विकल,
विफल से हो जायें बस वे एक पल
हे सहन, तू तो क्षमा करना मुझे,
सहन करना ही पड़ेगा यह तुम्हें।
किस लिए थे आज इतने वैद्यजन
पड़ गया अवसन्न अब सब तन-बदन?
क्यों सभी के सामने ही छोड़ लाज,
रो रहे हो किस लिए हे नाथ, आज?
चल चुकी हूँ; कोटि-कोटि प्रणाम है,
रुंध गया है कंठ, पूर्ण विराम है।

• घट

कुटिल कंकड़ों की कर्कश रज
मल-मल कर सारे तन में,
किस निर्मम निर्दय ने मुझको
बाँधा है इस बंधन में।
फाँसी-सी है पड़ी गले में
नीचे गिरता जाता हूँ;
बार-बार इस अंध-कूप में
इधर-उधर टकराता हूँ।

ऊपर नीचे तम ही तम है,
बंधन है अवलंब यहाँ!
यह भी नहीं समझ में आता
गिर कर मैं जा रहा कहाँ!!

ओ कठोर, तेरी कठोरता
　　　　　　कर दे हमको कुलिश-कठोर।
ओ दुस्सह, तेरी दुस्सहता
　　　　　　सहज सह्य हमको हो जाय;
तेरे प्रलय-घनों की धारा
　　　　　　निर्मल कर हमको धो जाय।
अशनि-पात में निर्घोषित हो,
　　　　　　विजय-घोष इस जीवन का;
तड़ित्तेज में चिर ज्योतिर्मय,
　　　　　　हो उत्थान-पतन तन का।
बंधन-जाल तोड़कर सहसा
　　　　　　इधर-उधर के कूलों का,
तेरी उच्छृंखल धन्या में
　　　　　　पागलपन हो इस मन का।
निजता की संकीर्ण क्षुद्रता
　　　　　　तेरे सुविपुल में खो जाय;
ओ दुस्सह, तेरी दुस्सहता
　　　　　　सहज-सह्य हमको हो जाय।
आ तूफान, हमको भी दे जा
　　　　　　निज उन्मादना का कुछ अंश;
नई सृष्टि के नवोल्लास में
　　　　　　फूट पड़े तेरा विध्वंस।
नव-मूर्ति अमृत के घट-सा
　　　　　　दे ऊपर की ओर उछाल—
[illegible] का धनतम मथ कर
　　　　　　[illegible] विप्लव का [illegible]

जीर्ण शीर्णता के दुर्गों को,
कुसंस्कार के स्तूपों को
ढा दे एक साथ ही उठकर,
दुर्जय, तेरा क्रोध-कराल।
कुछ भी मूल्य नहीं जीवन का
हो यदि उसके पास न ध्वंस;
ओ कृतांत, हमको भी दे जा
निज कृतांतता का कुछ अंश।
ओ भैरव, कवि की वाणी का
मृदु माधुर्य लजा दे आज,
वंशी के ओठों पर अपना
निर्मम शंख बजा दे आज !
नभ को छूकर दूर दूर तक
गूँज उठे तेरा जय-नाद;
घर के भीतर छिपे पड़े जो
बाहर निकल पड़ें साह्लाद।
तिमिर-सिंधु में डूब तैर कर
सुप्रभात-से उठ आवें,
निखिल संकटों के भीतर भी
पावें तेरा पुण्य-प्रसाद।
जीवन-रण के योग्य हमारा
निर्भय साज सजा दे आज,
आ भैरव, कवि की वाणी में
निर्मम शंख बजा दे आज !

श्री भगवतीचरण वर्मा

(जन्म संवत् १९६०)

श्री भगवतीचरण वर्मा का जन्मस्थान संयुक्तप्रान्त के उन्नाव ज़िले का शफ़ीपुर नामक स्थान है। ये छायावादी कवियों में अनुभूति-प्रधान और सरस रचनाएँ लिखने में बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। इनकी कविताओं में स्वाभाविक ओज, सहानुभूति और प्रभाव रहता है। भाषा सरल और सानुप्रास होती है। कल्पनाएँ क्लिष्ट नहीं होतीं। भावनाएँ हृदय को बेचैन कर देने वाली होती हैं। यद्यपि [illegible] कहना ही है कि इनको प्रेम रहा है, ये कवि-सम्मेलनों में बहुत मधुर और [illegible] ढंग से पढ़ते हैं। इनकी कविताओं की शब्द-रचना सरल और प्रभावोत्पादक होती है। इनमें ओज भी अधिक है।

इनकी रचनाएँ अस्वाभाविक कल्पित नहीं हैं। ये संसार के, मनुष्य-जीवन के सुख-दुख, उत्थान-पतनों से भरी हुई हैं। यही कारण है कि इनकी रचनाएँ लोगों को बहुत पसंद आती हैं।

कवि के साथ ही ये कुशल कहानी-लेखक और उपन्यासकार भी हैं।

'प्रेम-संगीत' के अतिरिक्त इनके दो और ग्रंथ—'मधुकण' नामक कविता-संग्रह तथा 'चित्रलेखा' नामक उपन्यास—प्रकाशित हुए हैं।

हिंदू

(१)

तुम विनाश के लक्ष्य, पतन के कलुषित जीवन;
तुम कलंक के अंक, अवनि के पाप-पुरातन!
तुम जड़ता के दास, रुदन है सारा साहस!
अरे, भूमि पर पड़े हुए हो कायर परवश।
ऐ जीवन के व्यंग कहाँ है वह गौरव, वह मान।
मिटने वाले मिटना ही है क्या दर्शन का ज्ञान?
तुम्हारी सहन-शीलता और
तुम्हारा महत् आत्म-बलिदान,
तुम्हारा धर्म, कर्म, आचार,
तुम्हारी कला, तुम्हारा ज्ञान—
अरे कायर! मिथ्या आलाप—
स्वयं करते अपना अपमान!
अपने ही को धोखा देना, यही असंभव बात,
अपने ही हाथों से अपना तुम करते हो घात।

(२)

तुम ममत्व की मूर्ति, मठ के सदा उपासक,
निज इच्छा की पूर्ति, वासना के तुम याचक;
भेद-भाव के दास, धर्म के अविचल साधक;
विधवाओं के काल और गायों के पालक—
पशुओं पर है दया, मनुष्यों पर है अत्याचार!
व्यंग-मात्र है अरे पतित यह सब तेरा आचार!
अरे ये इतने कोटि अछूत,
तुम्हारे पैरों ही के दास!

दूर है छूने की ही बात
पार है जाना इसका पास
किन्तु, फिर भी हो मस्तक-प्रेम,
अरे पाओ कैसा विश्राम ?

"दुर्दिनांत को पार फेंकना" मत करना इनकार—
मिटने वाले मिटने का है बस इतना ही सार।

(३)

अरे सन्यासी ! आज बवंडर है आडंबर;
अरे मनस्वी ! आज बना मन तूफान का घर;
अरे तपस्वी ! आज हुआ तप घोर निरादर,
मिटने वाले ! काल-चक्र का कैसा चक्कर !
फिर भी तुम जीवित हो अब तक यही अनोखी बात !
दुख दुर्बलों का है, पर तुम मिटते हो दिन रात।

पार के [illegible] के दो बूँद
[illegible] है, तुम [illegible],
[illegible] का परिवर्तन है सार,
[illegible] बने हैं सब [illegible],
परिस्थितियों के [illegible] [illegible]
[illegible] में [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] किन्तु [illegible] [illegible],
[illegible] परिस्थिति के [illegible] का परिवर्तन [illegible] !

(४)

[illegible] अरे ! [illegible] है [illegible] [illegible],
[illegible] अरे ! यही [illegible] है [illegible] जीवन;
[illegible] अरे ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] आत्मसाधन किसका? सोचो ज़रा गुलाम!
[illegible] दाशा करना है मनुष्य का काम।
किन्तु तुम हो पशुओं से हीन,
तुम्हारा [illegible] होता है ह्रास,
[illegible] आजकल किसा के लक्ष्य,
[illegible] कैसा विश्राम!
[illegible] -दान का नाम
[illegible] तुम [illegible] के दाम।
[illegible] सदा तुम रोते रहे निराश;
[illegible] ही कर देती है नाश।

(५)

[illegible] से भुज-बल से,
[illegible] प्रबल से,
[illegible] नीति से बल से छल से,
[illegible] रिपु-दल से!
[illegible] की चाह!
[illegible] यही तुम्हारी थाह!
[illegible] निपट अनजान
[illegible] वह कैसा बंधन!
[illegible]
[illegible] भयानक पतन!
[illegible], तुम बनो मनुष्य
[illegible] है व्यर्थ तुम्हारा रुदन!
[illegible] तुम्हारा जीवन ही है भार—
[illegible] है संसार!

दीवानों का संसार

हम दीवानों की क्या हस्ती
हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले;
आए बन कर उल्लास अभी
आँसू बन कर बह चले अभी।
सब कहते ही रह गए, अरे
तुम कैसे आए, कहाँ चले!

किस ओर चले? यह मत पूछो,
चलना है, बस इसलिए चले
जग से उसका कुछ लिए चले,
जग को अपना कुछ दिए चले
दो बात कही, दो बात सुनी'
कुछ हँसे और फिर कुछ रोए
छक कर सुख-दुख के घूँटों को
हम एक भाव से पिए चले!

हम भिखमंगों की दुनिया में
स्वच्छंद लुटाकर प्यार चले,
हम एक निसानी-सी उर पर
ले असफलता का भार चले,
हम मान-रहित, अपमान-रहित
जी भर कर खुल कर खेल चुके;
हम हँसते-हँसते आज यहाँ
प्राणों की बाजी हार चले!

हम भला बुरा सब भूल चुके,
नत-मस्तक हो मुख मोड़ चले;
अभिशाप उठा कर होठों पर
वरदान दृगों से छोड़ चले,
अब अपना और पराया क्या !
आबाद रहें रुकने वाले !
हम स्वयं बँधे थे और स्वयं
हम अपने बंधन तोड़ चले !

मेरी आग

(१)

निज उर की वेदी पर मैंने महायज्ञ का किया विधान,
[illegible] बनाकर आ बसते हैं चुन-चुनकर अपने अरमान।
अभिलाषाओं की आहुतियों से आता है ज्वाल महान;
और जलाने को आता है अपनी आशा का बलिदान।
अभिनन्दन करता है उसको इन आहों का भैरव राग;
धधक उठ, धधक उठ, अरी भयंकर उठ महानाश की मेरी आग!

(२)

आमन्त्रित हैं वहाँ! पलक से आँसू-कण [illegible] वाले,
दुख-दल से [illegible] [illegible] के स्वप्नों को भरने वाले,
यौवन की [illegible] तृष्णा से भड़क भड़क मरने वाले,
संसार के सब स्वर्गों से वंचित हो मरने वाले,
सुख जलाने के साज हैं जिनके विकल नहीं प्राण!
धधक उठ, धधक उठ, अरी भयंकर उठ महानाश की मेरी आग!

(३)

इस उन्मद में आन-जुटे हैं हँस-हँस बलि होने वाले,
निज अस्तित्व मिटाकर पल में तन-मन-धन खोने वाले,
उर की लाली से इस जग की कालिख को धोने वाले,
हँसने वालों के विषाद पर जी भर कर रोने वाले;
आज आँसुओं का धन लेकर आया है मेरा अनुराग!
जल उठ, जल उठ, अरी धधक उठ महानाश सी मेरी आग!

(४)

यहाँ हृदय वालों का अनुपम पीड़ाओं का मेला है;
अर्घ्यदान है अपनेपन का, यह पूजा की बेला है;
आज विस्मरण के आँगन में जीवन की अवहेला है,
जो आया है यहाँ प्राण पर वह अपने ही खेला है,
फिर न मिलेंगे ये दीवाने, फिर न मिलेगा इनका त्याग।
जल उठ, जल उठ, अरी धधक उठ महानाश सी मेरी आग!

(५)

लपटें हों विनाश की जिसमें जलता हो ममत्व का ज्ञान,
अभिशापों के अंगारों में झुलस रहा हो विभव विधान;
अरे क्रांति की चिनगारी से तड़प उठे कामना महान,
उच्छ्वासों के धूम्र-पुंज से ढक जावे जग का अभिमान,
आज प्रलय की वह्नि जल उठे जिससे शोला बने विराग!
जल उठ! जल उठ; अरी धधक उठ! महानाश सी मेरी आग!

किरण-कण

एक दीपक-किरण-कण हूँ।
धूम जिसके क्रोड़ में है, उस अनल का हाथ हूँ मैं,
नव प्रभा लेकर चला हूँ, पर जलन के साथ हूँ मैं।
सिद्धि पाकर भी तुम्हारी साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।
व्योम के उर में अपार भरा हुआ है जो अँधेरा,
और जिसने विश्व को दो बार क्या, सौ बार घेरा,
उस तिमिर का नाश करने के लिए मैं अटल प्रण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।
शलभ को अमरत्व देकर प्रेम पर मरना सिखाया,
सूर्य का संदेश लेकर रात्रि के उर में समाया,
पर तुम्हारा स्नेह पाकर भी तुम्हारी ही शरण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

चन्द्र-किरण

यह चन्द्र-किरण छू कर आई।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

तुम्हारा चाँद, सूर्य, आकाश,
तुम्हारी संध्या, ऊषा, प्रकाश;
निशा, दिन, उपवन, वन, मधुमास,
करो शासन, हे राजकुमार !
खोलती हूँ पिंजरे का द्वार !!

याचना

हे प्रभु, हे प्रभु जीवन दो !
आँधी आवे, बादल बरसे, बिजली कड़के !
[illegible] हो मारे [illegible] की छाती धड़के !
[illegible] हो [illegible] न फिर भी [illegible] मन दो !
हे प्रभु, हे प्रभु जीवन दो !
लहरें लहरें, डगमग-डगमग नौका डोले !
[illegible] लहरों में [illegible] का [illegible] [illegible] बोले !
[illegible] नहीं [illegible] को [illegible] मुझे [illegible] दो !
हे प्रभु, हे प्रभु जीवन दो !

पिंजड़े का पक्षी

(१)

[illegible], क्या हुआ मुझे [illegible] सुख के [illegible], [illegible] सुनाओ,
[illegible] की [illegible] का [illegible] [illegible] किस का [illegible] दिखाओ !"
[illegible] [illegible] [illegible] तुम [illegible] [illegible], [illegible] हुई है, क्या [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible], "पिंजड़े का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] !"
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] !
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] !

चलते चलें सदा एकाकी,
चलते-चलते ही मिट जावें,
हारिल पक्षी से अम्बर में
उड़ते-उड़ते प्राण गँवावें ।

(८)

प्रिये, छोड़ बैठे जो घर हम अब उस घर की याद करें क्यों ?
स्वप्न हो गए दिवस सुखों के उनकी स्मृति में आह भरें क्यों ?
वर्तमान का तीखा प्याला पीलें हँसते हुए, डरें क्यों ?
मरने के पहले ही, बोलो, बार-बार बेकार मरें क्यों !
यह सच है दिल ही तो है यह,
कभी टूट जाता दर्पण-सा,
पर, कठोर जग में रहने को
इसे बनाना है पाहन-सा !

(९)

क्या कहती हो, पर्ण-कुटी में आज भयानक तम है छाया !
दीप जलाने भर को हमने स्नेह नहीं दुनिया में पाया।
यह भी अच्छा है, अब जग की हमें न फुसलावेगी माया।
इसने है निर्वासन हमको दे अटूट विद्रोह जगाया।
थके हुए प्राणों में निशिदिन
तीव्र जला करती है ज्वाला !
प्रिये, शान्त अब ऐसे कर दो,
गहरा भर दो मद का प्याला !

(१०)

सजनि, मनोरंजन अब कैसा वीणा मेरे पास न लाओ !
कोयल बन क्यों व्यर्थ जगत की डाल-डाल पर गीत सुनाओ।

आज आखिरी बार एक क्षण और तुम्हें देता हूँ, आओ!
इस आकुलतम क्षणकी स्मृतिमें युग-युग महामिलन सुखपाओ!
अब ममता की जंजीरों से
विद्रोही को मुक्त बनाओ!
शस्त्र हाथ में देकर मुझको
समर-भूमि की राह दिखाओ!

(११)

क्यों कहती हो एक घड़ी रुक, मधुर स्नेह-संगीत सुनाऊँ!
सूखी हुई स्नेह क्यारी में क्षण जीवन की धार बहाऊँ!
मेरी साँस-साँस में ज्वाला, बोलो तो, सखि, कैसे गाऊँ?
मुझको जाने दो, इस ज्वाला में जग का अभिमान जलाऊँ?
जग को रहने योग्य बनाऊँ
या अपना अस्तित्व मिटाऊँ।
क्यों बेदर्द जगत् के आगे
पीड़ा को बेपर्द बनाऊँ?

रक्षा-बंधन

(१)

बहन, बाँध दे रक्षा-बंधन मुझे समर में जाना है।
अब के घन-गर्जन में रण का भीषण छिड़ा तराना है।
दे आशीश जननि के चरणों में यह शीश चढ़ाना है।
बहन, पोंछ ले अश्रु गुलामी का यदि दुःख मिटाना है।
अंतिम बार बाँध ले राखी,
कर ले प्यार आखिरी बार—
मुझ को, ज़ालिम ने फाँसी की
डोरी कर रक्खी तैयार।

गीत

अविरत पथ पर चलना री!
[illegible] जीवन का चरम लक्ष्य है
[illegible] मुक्ति, मत छलना री!
अविरत पथ पर चलना री!
[illegible] महन है
[illegible] जीवन का मर्म है?
[illegible] शाश्वत है,
[illegible] गलना री!
अविरत पथ पर चलना री!
[illegible] शय्या पर सोना,
[illegible] सहना-सब खोना,
[illegible] पर विकल न होना,
[illegible] करके जलना री!
अविरत पथ पर चलना री

उपेक्षित दीप

[illegible] इस दीपक की अन्तिम बार।
[illegible] व्यथा का विस्मृत हुआ करुण संसार।
[illegible] भी [illegible] किया न कुटिया का शृंगार।
[illegible] हृदय ने ढाली नहीं स्नेह की धार!
[illegible] बिजली पर मरता है
जहाँ स्नेह का नहीं निशान;
मगर इस छोटी सी लौ का
यहाँ नहीं हो सकता मान।

आत्म-परिचय

मैं जग-जीवन का भार लिए फिरता हूँ,
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ;
कर दिया किसी ने झंकृत जिनको छू कर,
मैं साँसों के दो तार लिए फिरता हूँ!
मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूँ,
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ,
जग पूछ रहा उनको, जो जग की गाते,
मैं अपने मन का गान किया करता हूँ!
मैं निज उर के उद्गार लिए फिरता हूँ;
मैं निज उर के उपहार लिए फिरता हूँ;
है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता;
मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूँ!
मैं जला हृदय में अग्नि दहा करता हूँ,
सुख-दुख दोनों में मग्न रहा करता हूँ!
जग भव-सागर तरने को नाव बनाए,
मैं मन मौजों पर मस्त बहा करता हूँ!
मैं यौवन का उन्माद लिए फिरता हूँ,
उन्मादों में अवसाद लिए फिरता हूँ,
जो मुझको बाहर हँसा, रुलाती भीतर,
मैं, हाय, किसी की याद लिए फिरता हूँ,
कर यत्न मिटे सब, सत्य किसी ने जाना?
नादान वहीं है, हाय, जहाँ पर दाना!
फिर मूढ़ न क्या जग, जो इस पर भी सीखे,
मैं सीख रहा हूँ, सीखा ज्ञान भुलाना!

बच्चे प्रत्याशा में होंगे,
नीड़ों से झाँक रहे होंगे—
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है!
दिन जल्दी जल्दी ढलता है!

मुझ से मिलने को कौन विकल?
मैं होऊँ किसके हित चंचल!
यह प्रश्न शिथिल करता पद को भरता उर में विह्वलता है!
दिन जल्दी जल्दी ढलता है।

बीत चली संध्या की वेला !

बीत चली संध्या की वेला
धुँधली प्रतिपल पड़ने वाली,
एक रेख में सिमटी लाली,
कहती है, समाप्त होता है सतरंगे बादल का मेला!
बीत चली संध्या की वेला

नभ में कुछ द्युतिहीन सितारे
माँग रहे हैं हाथ पसारे—
'रजनी आए, रवि-किरणों से हमने है दिन भर दुख झेला।'
बीत चली संध्या की वेला!

अंतरिक्ष में आकुल-आतुर,
कभी इधर उड़, कभी उधर उड़,
पंथ नीड़ का खोज रहा [illegible] पिछड़ा पंछी एक अकेला!
बीत चली संध्या की वेला।

राग सदा ऊपर को उठता, आँसू नीचे झर जाते हैं।
झड़ते हैं, तारे गाते हैं।

मैंने खेल किया जीवन से

मैंने खेल किया जीवन से !
सत्य भवन में मेरे आया,
पर मैं उसको देख न पाया,
दूर न कर पाया मैं, साथी, सपनों का उन्माद नयन से !
मैंने खेल किया जीवन से !
मिलता था बेमोल मुझे सुख,
पर मैंने उससे फेरा मुख,
मैं खरीद बैठा पीड़ा को यौवन के चिर संचित धन से !
मैंने खेल किया जीवन से !
थे बैठे भगवान हृदय में,
देर हुई मुझको निर्णय में,
उन्हें देवता समझा जो थे कुछ भी अधिक नहीं पाहन से।
मैंने खेल किया जीवन से !

विजया दशमी

आज पराजय के पथ में यह कैसी भूली विजय मिली,
सदियों की जंजीर झनझना याद दिलाती कौन चली ?
मेरी कारा टूट जायगी अरी झाँकते ही तेरे ।
मुश्किल से अरमान सुलाए, अभी रुके आँसू मेरे ।
स्मृतियों से पहले की स्मृतियों, तुम्हें बुलाने कौन गया ?
हमें दासता में मरने दो, क्यों दुहरानी पाठ नया !
तुमने रामचरण की रज ले विजयावलियाँ लिख डालीं !
जिनकी हुंकृति पर सब जग की आँखों की बिखरी लाली !
सुधि है कलियों का झंझा के झोंकों से विजयी होना,
और दुधमुहों के थप्पड़ से सिंहों का सुध-बुध खोना ।
सुधि है छोटे से रघु द्वारा इन्द्रासन कँप जाने की !
सुधि है क्षात्र-तेज के आगे भूमंडल थर्राने की !
सुधि है केवल हाथ उठाकर प्रण करते वसुधाधर की !
सुधि है शोणित भरने वाले रणचंडी के खप्पर की !
स्मृतियाँ कुछ कुछ अभी बची हैं विश्व विजय करने वाली ।
अब भी कभी-कभी रोती हैं उन पर आँखें मतवाली ।
कल ही तो उस चन्द्रगुप्त के सम्मुख यूनानी हारे ।
कल ही तो अशोक का पद-रज सिर धरते भूपति सारे !
पर कवि उन्हें याद करने का तुमको है अधिकार नहीं !
भूलो, उन पवित्र चरणों की स्मृति का यह संसार नहीं !
आज सभी कुछ उलट गया है उलटी हवा जमाने की ।
आज यहाँ रोने की बारी लज्जित हो मर जाने की ।
अब जीवन में पराजयों का जमघट ही तो बाकी है ।
तब तो मृत्यु मृत्यु में थी, अब जीवन में भी झाँकी है ।

हिय-हारिल

[illegible] हिय-हारिल मेरा
इस सूनी दुनिया में [illegible]
तुम हा और कहाँ हम होगा ?
मुझे ! तुम्हारी [illegible]
[illegible] मेरा [illegible] होगा

[illegible]
[illegible]
मुझे [illegible] की [illegible]
[illegible]

[illegible] के ही [illegible]
पर न दिन [illegible]
[illegible]
मेरे [illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible] है [illegible]
[illegible]

[illegible] है, [illegible]
[illegible]
[illegible] है [illegible]
हो [illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

शब्द-वेध

मौन रहे छिन्न-भिन्न घाटी में
कौन शिखर का ध्यान करे
ऐसा वीर कहाँ कि शैल-दल
फूलों का मधु-पान करे?
लक्ष्य-वेध है कठिन, अमा का
सूचि-भेद्य तम-तोम कहाँ,
ध्वनि पर छोड़े तीर, कौन वह
शब्द-वेध संधान करे?

'गूँगी ऊपर सेज बिछा की
दीवानी मीरा सो ले,
अपना रंग कहाँ देखेगा—
जो अशेष बलिदान करे!
जीवन की अब गई कसक
तब उठी यहाँ विष के दाने,
अहरागिनी अमा, आग—
बिजली का सा सामान करे!

पगली अपना नहीं जानी—
हाँ वह अपना भिन्न मार्ग बना,
पर किसे आता हो वह
तैयार स्वयं अपमान करे!
फूल मरें; आँख कहें कलिका
का संलग्न प्राण हुआ,
हाँ दिन का है मान हृदय क्या
ऐसों में पहचान करे!

शिर देकर सौदा लेते हैं
जिन्हें प्रेम का रंग चढ़ा
फीका रंग रहा तो घर तज
क्या गैरिक-परिधान करे !
श्रम पद की मंजीर गूँजती;
हो नीरव-सुनसान जहाँ,
सुनना हो तो मन्त्र प्रसंग,
निज को पहले वीरान करे !
मणि पर है आवरण, दीप से शून्यों में क्या काम चला ?
दुर्गम पंथ, दूर जाना है, क्या पंथी अनजान करे ?
तरी खेलती रहे लहर पर यह भी एक मर्मी कैसा ?
डाँड छोड़, पतवार तोड़कर तू कवि निर्भय गान करे !

अगेय की ओर

गायक, गान, गेय से आगे मैं अगेय स्वन का श्रोता मन !
सुनना श्रवण चाहते अब तक
भेद हृदय जो जान चुका है,
बुद्धि खोजती उन्हें, जिन्हें
जीवन निज को कर दान चुका है,
खो जाने को प्राण विकल हैं
चढ़ उन पद-पद्मों के ऊपर,
बाहु पाश से दूर जिन्हें
विश्राम हृदय का मान चुका है,
खोज रहे उनका पथ दृग, जिनको पहचान गया है चिंतन,
गायक, गान, गेय से आगे, मैं अगेय स्वन श्रोता मन !
छलछल-उच्छल बह रहा अगम की
ओर अभय इन प्राणों का जल,

[illegible] की सुगम घाटियाँ
[illegible] जिसका पथ निष्फल,
मैं [illegible] कर चुप हूँ,
[illegible] यह स्वच्छ पुलिन पर—
मैं [illegible] उस रव का ?
[illegible] कल कल ध्वनि चंचल"
[illegible] ? मैं या धारा-प्रवाह चिरंतन ?
[illegible] आज मैं अतीत स्वप्न का भोला मन !
[illegible] यह कवि था,
[illegible] जीवन अपने में,
[illegible] मृदु कथा वह,
[illegible] अपने में ?
[illegible] रही है
[illegible] में,
[illegible] जीवन
[illegible] अपने में।
[illegible] कौन ? कौन है संगी !
[illegible] अतीत स्वप्न का भोला मन ?
[illegible] की
[illegible] था,
[illegible] था,
[illegible] से।
[illegible] वह
[illegible] निराश्रय
[illegible] सनातन
[illegible] में।
[illegible] स्वप्नों का [illegible] ?
[illegible] मैं अतीत स्वप्न का भोला मन !

संकेत

पृष्ठ २२—करुणा-सरिता—इस कविता में ईश्वर की करुणा को नदी का रूपक दिया है।

पृष्ठ २२—होली—इस कविता में होली के रीति-रिवाजों के बहाने देश में फैली हुई कुरीतियों का दिग्दर्शन कराया गया है

पृष्ठ २३—प्रात-समीरण—इस कविता में प्रात-समीरण को अनेक रूपकों और उपमाओं से बाँधा है तथा प्रभात-काल के सौन्दर्य का भी वर्णन किया है।

पृष्ठ २५—अहिफेन-ओदन—इस कविता में कवि ने संकेत किया है कि मानो हर घड़ी मौत के मुँह की ओर बढ़ा चला जा रहा है।

पृष्ठ २५—भारत-दुर्दशा—इस कविता में कवि ने भारत के अतीत गौरव और वर्तमान दुर्दशा का चित्र खींचा है।

पृष्ठ ३०—संग्राम-निन्दा—यह रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' की एक बड़ी कविता का कुछ अंश है। इसमें कवि ने संग्राम की अर्थात् हिंसा की निन्दा की है।

पृष्ठ ३१—अमलतास—अमलतास एक प्रकार का वृक्ष होता है। ग्रीष्म की दोपहरी में जब सब तरह के वृक्ष मुरझाए रहते हैं तब अमलतास के पीले सुमन मुसकराते नज़र आते हैं। कवि कहता है कि अमलतास बसंती रंग से रँगा हुआ है, अर्थात् अपने प्रभु ईश्वर की भक्ति में तल्लीन है, इसलिए उस पर घोर ग्रीष्म का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जो ईश्वर की भक्ति में लीन रहता है उसे संसार के संकट भी कष्ट नहीं पहुँचा सकते।

पृष्ठ ३३—सजनी—इस कविता में भारत के प्राचीन शास्त्रों की मान्यता के अनुसार ऋतुओं का गुण बताया गया है।

पृष्ठ ३७—हिमालय—इस कविता में पं० श्रीधर पाठक ने हिमालय के सौंदर्य का चित्र खींचा है

पृष्ठ ३८—भारत-गीत—श्रीधर पाठक ने देश का गौरव गाने के लिए कई गीत लिखे हैं जो 'भारत-गीत' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए हैं। यह गीत भी उसी पुस्तक से लिया गया है। इसमें भारत के बल-विक्रम वैभव-गौरव का वर्णन किया गया है।

पृष्ठ ३९—छात्र—इसमें छात्रों को—देश के नौजवानों को—देश के कर्णधार बनने का संदेश दिया गया है।

पृष्ठ ४०—आर्य-महिला—इस कविता में आर्य-महिला के शील की, सौंदर्य और शक्ति का वर्णन किया गया है।

पृष्ठ २४—दीपावली—इस कविता में श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ने दीपावली की आभा का वर्णन किया है। कविता की ललित शब्दावली उसकी विशेषता है।

पृष्ठ ४३—भारत के नवयुवक—इस कविता में कवि ने भारत के नवयुवकों को देश की दीन दशा को दूर करने के लिए उत्साहित किया है।

पृष्ठ ४५—शक्ति—इस कविता में कवि ने बताया है कि शक्तिवान वह है जो शक्ति का उपयोग निर्बलों की सहायता के लिए करता है, न कि अत्याचार करने को।

पृष्ठ ४६—प्रिय-प्रवास—इस कविता में उस समय का करुण चित्र खींचा है जब अक्रूर कृष्ण बलराम को नन्द के यहाँ से मथुरा ले गये थे। नन्द, यशोदा तथा संपूर्ण ब्रज-मंडल के वियोग-व्यथित हृदय का चीत्कार इस कविता में है, जो बहुत ही मार्मिक है'। यह कविता श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय के 'प्रिय-प्रवास' महाकाव्य का अंश है।

पृष्ठ ५२—आगे—इस कविता में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने मनुष्य को सदा अपने लक्ष्य की ओर बढ़ जाने का आदेश दिया है। पिछली

असफलताओं और भावी बाधाओं की परवाह न करते हुए आगे बढ़ते जाना ही मनुष्य का स्वाभाविक धर्म होना चाहिए।

पृष्ठ ५३—एक फूल—यह कविता संभवतः बाबू मैथिलीशरण गुप्त के इकलौते बेटे की मृत्यु के समय उन्होंने लिखी थी। उन्होंने उस को अपने जीवन के एक फूल की उपमा दी है। कविता बहुत मार्मिक है।

पृष्ठ ५४—क्षार-पारावार—इस कविता में कवि गुप्त खारे महासमुद्र को अपनी मर्यादा न छोड़ने के लिए कह रहा है। वह कहता है तू महान है। तेरे सामने पृथ्वी तुच्छ है, व्योम तेरी ऊर्मि में, आवर्त में चालक है, तेरा बाष्प संसार में रस-वृष्टि करता है। तुझे सहिष्णुता नहीं छोड़नी चाहिए। बलवानों और महान व्यक्तियों को संयत और धीर होना शोभा देता है। कविता में समुद्र का वर्णन बहुत सुंदर हुआ है।

पृष्ठ ५६—निर्झर—इस कविता में निर्झर का जीवन-संगीत सुनाया गया है। वह पत्थर को भी फोड़ कर बह पड़ा है, और रास्ते की बाधाओं को लाँघता हुआ, संसार में हरियाली भरता हुआ, सब को सुख पहुँचाता हुआ प्रियतम समुद्र से मिलने बढ़ रहा है। इस कविता को मनुष्य-जीवन रूपी निर्झर के साथ भी मिलाया जा सकता है। वह भी विघ्नों के पत्थर को तोड़ कर बह पड़ा है, वह सांसारिक बाधाओं को लाँघता हुआ जगत् का मंगल करता हुआ, सब को प्यार सुनाता हुआ 'प्रियतम' में मिल जावेगा। यह रचना छायावाद की कोटि में आती है।

पृष्ठ ५८—उर्मिला की विरह-वेदना—गुप्तजी के प्रसिद्ध महाकाव्य 'साकेत' से तीन पद्य लिए गए हैं। वाल्मीकि, तुलसीदास आदि महाकवियों ने राम-चरित लिखते समय लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला को सर्वथा भुला दिया है। १४ वर्ष तक लक्ष्मण वन में रहे, उस समय वियोगिनी उर्मिला का क्या हाल रहा होगा यह किसी ने नहीं लिखा।

चाँदनी में, हेमंत में, आजन्म हिम विविध सुंदर रूपों में नज़र आता है, वह इस कविता में बहुत सुंदर ढंग से वर्णित है। भाव, भाषा और छन्द सभी दृष्टियों से रचना उत्कृष्ट है।

पृष्ठ ७५—वेदना-गीत से—इस कविता में कवि कोई वेदना-गीत सुनकर विह्वल हो उठा है। वह उसे संबोधन करके अनेक प्रश्न पूछता है कि तुम कुंजों में नहीं रुकते, देहरियों पर भी चढ़कर आ जाते हो और श्रोता के मस्तक को झुकवाने लगते हो। आगे जाकर कवि कहता है कि यहाँ तुम्हारा कौन आद० है? बाँस, बाँस, कुश तुम्हारी बातों का उपहास करते हैं। मतलब यह है कि संसार वेदना के गीतों को नहीं सुनता—दूसरे का दुख देखने का किसी को अवकाश नहीं है। अंत में कवि कहता है कि ओ वेदना के गीत, अब हिमालय पर तुम्हारी पुकार हुई है—अब तुम व्यर्थ नहीं हुंकार बन कर जाओ। और अभागों को (यानी नवयुवकों को) बलि के दरवाज़े पर चढ़ाने को लालायित करो। कविता के अंत में बलिदान की भावना जागृत करना 'एक भारतीय आत्मा' की अपनी विशेषता है।

पृष्ठ ७६—बलिदान—इस कविता में दिखाया गया है कि बलिदान व्यर्थ नहीं जाता। बलिदान वह बीज है जिससे विजय का वृक्ष उपजता है।

पृष्ठ ७७—उन्मूलित वृक्ष—यह कविता चतुर्वेदी जी ने तब लिखी थी जब उन्हें जबलपुर से प्रकाशित होने वाले 'कर्मवीर' से अलग किया गया था। जिस पत्र को आरंभ करने और प्रतिष्ठित करने में उन्होंने अपना सब कुछ लगा दिया, जब वहाँ से उन्हें अलग होना पड़ा तो दुखी होकर यह कविता लिखी। कविता के साथ कवि की उस समय की मनो-दशा जान लेने पर पाठक इसका मर्म अच्छी तरह समझ सकेंगे।

पृष्ठ ७८—कोकिल बोलो तो—यह चतुर्वेदी जी की बहुत

अंतःपुर में प्रियतम की झाँकी पाता है। इस अंतःपुर में वह स्वर की डोर पकड़ कर चलता है। त्रिभुवन का आलोक उसके अंतर में भर जाता है इस लिए बाहरी संसार उसके लिए केवल अंधकार मात्र रह जाता है।

मूक चित्रकार में कवि ने बताया है कि मौन ही चित्रकार की भाषा है, जिसको मौन भाषा में सुषम नायक ऊषा, तारिका, इन्द्र-धनुष आदि प्राकृतिक सौंदर्य में बोलता रहता है। चित्रकार त्रिभुवन की भाषा को मूक बना कर रख देता है।

बधिर कवि में कवि बताता है कि कवि अपनी साधना में तल्लीन है। उसे विधि-निषेध के बंधन, जग के व्यंग्य, उपहास, ताने सुनने का अवकाश नहीं है। वह बहरा है, उसे संसार की समालोचना नहीं सुनाई देती। वह अपनी साधना में निरत है।

पृष्ठ १२८—अनुरोध—यह रहस्यवादी कविता है। इसमें सुंदरी के रूप में परमात्मा की कल्पना की गई है उससे अपने रूप की ज्वाला में अतिथ, अनन्य, असुंदर को जला कर भस्म कर देने का अनुरोध किया गया है।

पृष्ठ १२८—जीवन-दीप—इस कविता में अनुपम दीपक में परम प्रकाश की, आत्मा में परमात्मा की कल्पना की गई है।

पृष्ठ १२६—जागो—यह मिलिन्द जी के 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक का एक गीत है। इसमें पराधीनता में सुख अनुभव करने वालों को चेतावनी दी गई है।

पृष्ठ १३१—रश्मि—यह कविता श्रीमती महादेवी वर्मा के 'रश्मि' नामक काव्यसंग्रह का एक गीत है। इसमें बताया गया है कि उस महाप्रकाश की 'एक किरण' के आगमन से ही विश्व स्पंदित, प्रकाशित और मुकुलित हो उठता है। अर्थात् परमात्मा का पाते ही साधक की आँखों में विश्व हास-उल्लासमय हो जाता है।

पार करके लक्ष्य तक पहुँचना ही पड़ेगा। यही उसका धर्म है। इस कविता में सदा कर्म-रत रहने का आदेश है।

पृष्ठ १५०—हिन्दू—इस कविता में हिन्दू की वर्तमान पतित अवस्था, दुर्बलता, मोहान्धता, रूढ़िवाद और मिथ्या अभिमान का खाका खींचा है और उसे आत्म-निर्भर होकर अपने पूर्व गौरव को प्राप्त करने का आदेश दिया है।

पृष्ठ १५३—दीवानों का संसार—जिन्हें लोग दीवाने कहते हैं वे वास्तव में परमहंस और आत्म-ज्ञानी होते हैं। वे संसार के सुख-दुख समान रूप से ग्रहण करते हैं। बिना राग-विराग के संसार के सभी कार्य करते हुए यहाँ से चले जाते हैं। ऐसे ही दीवाने का रूप वर्मा जी ने इस कविता में दिखाया है।

पृष्ठ १५४—मेरी आग—इस कविता में सर्वस्व का बलिदान करने वाले क्रान्ति देवी के उपासक के उद्‌गार व्यक्त किए हैं। जो बलि-पथ का यात्री है वह अपने सारे अरमान, आशा-अभिलाषाओं की की आहुति दे डालता है। यहाँ तक वह जीवन की भी अवहेलना करता है। ऐसे ही लोग क्रान्ति की प्रलयकारी ज्वाला जलाते हैं।

पृष्ठ १५७—अशांत—इस कविता में एक निराश और अशांत हृदय का चित्र है। अशांत हृदय सब वस्तुओं में दुख की छाया देखता है, लताओं में साँप छिपे हैं, शांति की किरणों के पीछे अशांति का अंधकार छिपा है, हास्य में रुदन, प्रेम में घृणा, दया में रोष, गुण में दोष उसे नज़र आता है। ऐसी अशांत हृदय की मनस्थिति होती।

पृष्ठ १५८—ये गजरे तारों वाले—इस कविता में कवि ने एक मालिन के रूप में रात्रि का चित्र खींचा है। रजनी-बाला तारों के गजरे लेकर संसार में बेचने निकली है। कवि कहता है कि यदि प्रभात तक कोई इनका खरीदने वाला न मिले तो इन्हें फूलों पर ओस बना कर बिखरा देना।

पृष्ठ १५६—यह तुम्हारा हास आया—निराशा के क्षणों में किसी 'महान' का सहारा प्राणी को मिलता रहता है। जिस समय [...] से आँसू बह पड़ते हैं उस समय भी तीर की तरह रवि-रश्मि मधुहास आ पहुँचता है। कोकिल हृदय को चीर कर रोती है, [...]ों के हृदय में उसकी प्रतिध्वनि समा जाती है। अर्थात् कई दुख [...]ी भावनाएँ उसे घेर लेती हैं, उनसे भी प्राणी उसके (ईश्वर के) [...]िक निकट होता जाता है।

पृष्ठ १६०—किरण-कण—इस कविता में जीवन की एक दीपक [...]ी किरण के रूप में तस्वीर खींची गई है। इस किरण में प्रकाश है [...]मल जलन भी है, सिद्धि मिल चुकी है फिर भी साधना समाप्त नहीं हुई है। जीवन तो एक अविरत साधना है, अविराम जलते रहना है।

देखने में छोटी सी किरण है लेकिन वह संपूर्ण विश्व में फैले हुए अन्धकार को दूर करने का प्रण लेकर आई है। लघु होते हुए भी महान है।

यह किरण पतंगे को मरना सिखाती है, सूर्य का संदेश रात्रि के समय सुनाती है। इसका महान जिसका व्यक्तित्व है, 'वह स्नेह समाप्त हो जाने पर उसी में समा जाती है जिससे पैदा हुई थी। यही तो आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध है।

पृष्ठ १६०—चन्द्र-किरण—आकाश से पृथ्वी पर उतरने वाली चन्द्र-किरण के प्रति यह उक्ति है। कवि कहता है जिस आकाश में नक्षत्र हैं, आलोक है, उसे छोड़कर मलीन, पीड़ा, रुदन और शोक से भरी मेरी पृथ्वी पर क्यों आई है? कवि ने एक कोमल भावना को छुआ है।

पृष्ठ १६१—आँसू—इस कविता में आँसू पर उक्तियाँ हैं। अंत में कवि और वैज्ञानिक की दृष्टि का अंतर भी दिखाया गया है। कवि जिसे आँसू कहता है—वह वैज्ञानिक के लिए जल है। कवि जिस प्रकार

हिन्दी प्रभाकर की सर्वोत्तम सहायक पुस्तकें

मुद्राराक्षस नाटक सटिप्पण

[सं०—श्री सत्येन्द्र विद्यार्थी]

[illegible] इसके जैसे का अन्य [illegible] नहीं [illegible]

विक्रमादित्य की कुंजी

(टीकाकार—श्री [illegible] सिद्धान्त [illegible]

[illegible] कॉलेज लाहौर

प्रस्तुत लेखक ने इसमें मूल नाटक के [illegible] कठिन स्थलों के अर्थ, संक्षिप्त व्याख्या, चरित्र-चित्रण और लेखक-परिचय देकर ऐसी कुंजी तैयार की है, जिससे विद्यार्थी सहज में ही इस पुस्तक को समझ सकते हैं। मूल्य ।=)

प्रबन्ध-प्रभाकर

[ले०—श्री गुलाबराय एम. ए.]

इस पुस्तक में १९२९ से लेकर अब तक के प्रभाकर परीक्षा में आये हुए निबन्ध दिए गए हैं। साथ ही कुछ अन्य साहित्यिक लेख भी जोड़ दिये गये हैं। निबन्धों की भाषा सरल होने पर भी परिष्कृत है, और विद्यार्थियों के लिए आदर्श कही जा सकती है। =)

मानव जाति का संघर्ष और प्रगति की प्रश्नोत्तरी

(ले०—इन्द्रचन्द्र विद्यालंकार)

इसमें प्रभाकर के पिछले वर्षों के प्रश्नपत्र [illegible] के लिए नियत हुई 'मानवजाति का संघर्ष और प्रगति' नामक पुस्तक से [illegible] पूछे जाने वाले सभी सम्भावित प्रश्न और उनके उत्तर दिये गये हैं। मूल्य १।)